उत्तरांचल में,
ढोल, ढोली, और ढोलवादन

Scanned with OKEN Scanner

श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम/प्लान

श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम की स्थापना 1977 में स्वर्गीय स्वामी मन्मथन द्वारा निराश्रित महिलाओं एवं बच्चों की आश्रयस्थली के रूप में अंजनीसैंण में की गई थी। महिलाओं व बच्चों के कल्याण के प्रति समर्पित संस्था के रूप में स्थापित इस स्वैच्छिक संगठन ने शीघ्र ही अपने अनुभवों से यह जान लिया कि उनके द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्य के सार्थक परिणाम व्यापक सामुदायिक विकास एवं जन सशक्तिकरण को संभव बनाकर ही पूर्ण हो सकते हैं। अतः विगत 22 वर्षों में संस्था ने अपनी गतिविधियों के स्वरूप एवं क्षेत्र की दृष्टि से व्यापक कार्य विस्तार किया है। आज गढ़वाल मण्डल के सभी जनपदों में फैली अपनी विभिन्न शाखाओं के माध्यम से संस्था पर्वतीय जनता के मध्य कार्य कर रही है। महिलाओं व बच्चों को आश्रय व सहायता देने के अपने मूल कार्य के साथ आश्रम आज सैकड़ों प्रशिक्षित सामुदायिक कार्यकर्ताओं, सहयोगियों एवं विशेषज्ञों की सहायता से जन कल्याण व सामुदायिक विकास के अनेक कार्यक्रम चला रहा है इनमें प्रमुख हैं– शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, जनसशक्तिकरण, महिला विकास, बाल विकास, उद्यमिता विकास, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, क्षेत्रीय विकास नियोजन इत्यादि। अपने सभी कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए आश्रम 'श्रम से सेवा व प्रतिमान से शिक्षा' का दर्शन अपनाता है।

1937 में स्पेन के गृहयुद्ध के दौरान विस्थापित एवं अनाथ हुए बच्चों की सेवा और कल्याण के लिए स्थापित किया गया संगठन 'प्लान इण्टरनेशनल' विगत सात दशकों से संसार के समस्त क्षेत्रों में अभावग्रस्त च्चों की निष्काम सहायता में लगा हुआ है। द्वितीय विश्व युद्ध काल में और उसके उपरान्त के पाँच वर्षों में 'प्लान' की गतिविधियों का केन्द्र युद्धग्रस्त यूरोप रहा। सन् 1950 के बाद यह अनुभव करते हुए कि यूरोप को अब उसकी सेवाओं की अधिक आवश्यकता नहीं है 'प्लान' ने विश्व के अन्य क्षेत्रों में कार्य विस्तार करना प्रारंभ किया। आज 'प्लान' अफ्रीका, एशिया, दक्षिणी अमेरिका व केरेबियाई द्वीप समूह के अनेक अविकसित एवं विकासशील राष्ट्रों की निर्धनतम जनता के मध्य लगभग दस लाख बच्चों, उनके परिवारों व समुदायों की सहायता कर रहा है। यद्यपि प्लान द्वारा बच्चों को सीधी सहायता भी दी जाती रही है तथापि 1987 के बाद से 'प्लान' जरूरतमंद बच्चों के कल्याण हेतु सामुदायिक विकास में सहयोग पर अधिक ध्यान दे रहा है।

'प्लान' एक ऐसे विश्व की रचना लेकर चलता है जिसमें सभी बच्चों को अपनी समस्त अन्तर्निहित क्षमताओं को विकसित करने का अवसर प्राप्त हो। इसके लिए 'प्लान' एक ऐसा समाज स्थापित करना चाहता है जो मानवों के अधिकारों व प्रतिष्ठा के पूर्ण सम्मान पर आधारित हो। 'प्लान' ने यह बीड़ा उठाया है कि विश्व के निर्धनतम क्षेत्रों के बच्चों को भी सर्वतोमुखी विकास का अवसर मिले जिसके लिए वह संस्कृति की सीमाओं के आर–पार मानवीय सहयोग को प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार 'प्लान' बच्चों के जीवन को एक नया अर्थ प्रदान करने के लिए पिछड़े समुदायों के साथ सहयोग करता है जिससे सामाजिक विकास में भावी पीढ़ी की पूर्ण सार्थक सहभागिता सुनिश्चित हो सके। इस प्रकार 'प्लान' विभिन्न संस्कृतियों में पले–बढ़े व अलग–अलग देशों में बसने वाले लोगों के बीच समझ, सहयोग एवं बंधुत्व विकसित करते हुए समग्र विश्व में बाल अधिकारों के पोषण में लगे एक गैर धार्मिक, गैर राजनीतिक एवं गैर शासकीय बाल कल्याण संगठन के रूप में कार्य कर रहा है। गढ़वाल क्षेत्र में क्षेत्रीय विकास द्वारा मानवता की सेवा के इस कार्य में 'प्लान' श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम का सहयोगी है।

Scanned with OKEN Scanner

ढोल, ढोली और ढोलवादन

© : श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम

प्रस्तुतकर्ता : गजेन्द्र नौटियाल

परिकल्पना एवं निर्देशन : मनोज भट्ट

टाइप एवं डिजाइन : संजीता बिष्ट, उषा डंगवाल एवं मकान भण्ड़ारी

आवरण : मोहन चौहान

संस्करण : जुलाई 2001

प्रकाशक : समवेत संसाधन केन्द्र, श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम/प्लान
अंजनीसैंण, टिहरी गढ़वाल- 249 121
फोन : 01376- 37448, 37724
फैक्स : 37581
ईमेल : sbmaplan@nde.vsnl.net.in

Scanned with OKEN Scanner

"आप पुत्रं भवेद् ढ़ोलं, ब्रहम पुत्रं च डोरिका।
पौन पुत्रं भवेद् नादम्, भीम पुत्रं गजाबलम्।।
विष्णु पुत्रं भवेद् पूड़म्, नाग पुत्रं च कुण्डलिका।
कुरूम पुत्रं कंदोटिका प्रोक्तं, गुणी पुत्रं च कस्णिका"।।

Scanned with OKEN Scanner

यह दस्तावेज

नवसृजित उत्तरांचल राज्य की कई विशिष्टताएं हैं। इन विशिष्टताओं को यदि सही तरीकों से संरक्षित और सम्वर्द्धित किया जाय और आज की प्रतिस्पर्द्धा की जरूरतों के अनुरूप बिना स्वरूप विकृत किए ढाला जाय तो यह राज्य विश्व के विशिष्टतम क्षेत्रों में एक बन जायेगा। इसी संदर्भ में यहां की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को देखा जा सकता है। राज्य की सांस्कृतिक विशिष्टताओं में एक अग्रतम थाती है ढोल व ढोलवादन। दुर्भाग्य से जो समय के साथ संरक्षण संवर्द्धन के अभाव में समाप्त होने की कागार पर है। प्रस्तुत दस्तावेज में ढोल से संबंधित जानकारियां संकलित करने का प्रयास किया गया है। यह दस्तावेज ढोल वादकों से जुड़े मुद्दों पर जन वकालात का एक प्रयास है जिसमें ढोल, ढोली व ढोलवादन के इतिहास का संक्षिप्त विवरण है। इतिहास में भी ढोल की उपयोगिता, उसकी आज के संदर्भ में प्रासंगिकता की झलक स्वतः ही समाहित है। ढोल के बिना उत्तरांचल की संस्कृति की कल्पना ही नहीं की जा सकती, इन तथ्यों को समझने वाले मनीषियों के प्रयासों का विवरण दस्तावेज में है। लोक जीवन में रचे–बसे ढोलवादन के विभिन्न जाने–अनजाने पहलू जो कालान्तर में शून्य में खो जाने की भयावह स्थिति की ओर बढ़ रहे हैं, उन्हे उजागर करने की कोशिश की गई है। अलग–अलग स्तर पर जो प्रयास वर्तमान में हो रहे हैं उनका उल्लेख किया गया है। ढोल की विशिष्ट संस्कृति, अलग–अलग अवसरों पर इसके अनन्त ताल–सुरों तथा आध्यात्मिक पक्ष आदि का विवरण दिया गया है। कुछ सर्वेक्षणों के विश्लेषण हैं जो वर्तमान में ढोल और ढोल वादन कर रहे परिवारों की सामाजिक, आर्थिक स्थितियों को सामने लाते हैं। दस्तावेज में प्रस्तुत ढोल, ढोली व ढोलवादन की समृद्धि हेतु तत्कालिक उठाये जा सकने वाले कदमों को भी इस दस्तावेज में उल्लेखित किया गया है। इस परिपेक्ष्य में अलग–अलग स्तर पर क्या–क्या किया जा सकता है यह तो महत्वपूर्ण है ही, और ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि उत्तरांचल की सांस्कृतिक नीति निर्धारण में ढोल और ढोली को विशिष्ट स्थान मिले। आर्थिक रूप से ढोली समुदाय को मजबूती प्रदान करने की जरूरत तो है ही, साथ ही, ढोल के अनेक खो जाते पक्षों को आज की जरूरतों के सापेक्ष संकलित, संरक्षित व परिष्कृत कर दस्तावेज के रूप में लाने और उस हेतु वातावरण बनाने की जरूरत है। आशा है कि प्रस्तुत दस्तावेज ढोल, ढोली और ढोलवादन को संरक्षित, संवर्धित करने के प्रयासों में सहयोगी होगा। उत्तरांचल राज्य बनने के बाद इसके लोग अपनी लोक संस्कृति के संरक्षण हेतु सचेत होंगे ऐसी कामनाएँ हैं।

आलेख में संस्कृत के श्लोक आम उच्चारण के अनुसार लिखे गये हैं ताकि पाठक आसानी से समझ सकें। ढोल सागर में मौखिक व लिखित रूप में प्रयुक्त श्लोक गढ़वाली मिश्रित संस्कृत में बोले व लिखे जाते हैं अतः उन्हें जस–का–तस उद्घृत किया गया है। ढोल के प्रयोगधर्मियों की सूची जितनी उपलब्ध हो सकी, हमने संकलित करने का प्रयास किया है। कई लोगों के व्यक्तिगत या समूहगत प्रयास इसमें छूट गये होंगे, जिसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

Scanned with OKEN Scanner

ढोलोऽवाचः

ढोल शब्द से आनद्ध (Percussion) वाद्य–यन्त्रों के संगीत का बोध होता है। इन वाद्य–यन्त्रों में ढोल के साथ दमौ, नगाड़ा, मांदल की तालें स्वाभाविक रूप से शामिल हो जाती हैं। ढोल का अपना विस्तृत ताल संसार है, ठीक वैसे ही, जैसे तबले, पखावज या पणव का। ढोल शब्द का नाम सुनते ही ताल संगीत के एक वृहद शास्त्र की प्रतीति होती है, जिसमें नाद की उत्पत्ति, वाद्य–यन्त्र की पौराणिकता, इस के दैवीय तथा मानवीय संगीत कारों, इसकी वर्ण, मात्राओं एवं छन्दों की ओर चिन्तन जाता है। इस विद्या पर ढोल–सागर नाम का एक शास्त्र मौखिक परम्परा में आठवीं नौवीं सदी के आसपास तक प्रचलन में रहा। जिसे पुस्तक रूप में लिखने के प्रयास हुए।

ढोल शास्त्र की व्यापकता का इससे बड़ा क्या प्रमाण हो सकता है कि, इसके **दस स्वरों** और **तेईस व्यंजनों** की सहायता से समूचे मानस खण्ड–"केदार खण्ड" में ढोल की 300 से अधिक तालों की रचना हुई है। ढोल का अपना ताल वाद्य (Orchestra) समूह है। ढोल के साथ आवश्यकतानुसार सुषिर (Airophonic) तथा धन (Chordophonic) वाद्य यन्त्र बजाये जाते हैं। जिसमें दमौं, नगाड़ा, भंकोरे, रणसिंगा, विणाई, सिणाई, मोछंग, अलगोजा, शंख, मसकबाजा, भांणा, कैंसाल तथा घण्टी शामिल हैं। प्रत्येक ताल में अलग–अलग वाद्य यन्त्रों को बजाने का प्रावधान और निषेध है।

ढोल के तालों की बारीकियों पर एक दृष्टि डालें। ढोल के दांयें पूड़ पर लांकुड़ (तीली) मारने पर "झें" या "धेन" या "धंण." वर्ण की उत्पत्ति होती है। बायें पूड़ पर हथेली के प्रहार से "ता" वर्ण की उत्पत्ति होती है। इसके अतिरिक्त अलग–अलग उंगलियों से उप बोलों की उत्पत्ति होती है। इसी तरह दमाऊं जो ढोल का पूरक वाद्य है उस पर दो यष्टिकाओं के प्रहार से "न" और "ड" वर्णो की ध्वनि निकलती है। पहला आघात "न" होता है और दूसरा आघात "ड़" दमौं के स्वर ढोल से ऊंचे होते है। अधिकांश ताल बदलने में दमौं ही पहल करता है।

"अरे आऊजी, प्रथमें अंगुली ब्रण बाजन्ती
दूसरी अंगुली मूल बाजन्ती
तीसरी अंगुली अबदी बाजन्ती
चतुर्थ अंगुली ठं ठं ठं कारन्ती
झपटि–झपटि बाजी अंगुष्टिका
धूम–धाम बाजी गजाबलम्"।

(ढोल सागर–श्लोक- 20)

छड़ी, लांकुड़ और उंगलियों के अतिरिक्त घुटने से भी उपबोलों की उत्पत्ति होती है। ढोल के स्वरों में विविधता लाने के लिये उंगलियों से जल तरंग जैसे स्वरों की उत्पत्ति तथा ढोल को सिर पर रख कर बजाने से गहन नाद पैदा किया जाता है। ढोल के विषय में आम आदमी का ज्ञान सीमित होने से इसकी घोर उपेक्षा हुई है। ढोल के तालों का विवरण देते हुये केशव अनुरागी ने ढोल बजाने की चार प्रमुख शैलियों का वर्णन किया है। अमृत, सिंधु, प्रराणि और मध्यानी, इनमें से भी सिर्फ मध्यानी शैली ही जीवित रह सकी है जिसकी तालों का विस्तृत विवरण दिया गया है :

Scanned with OKEN Scanner

1. **बढ़ै** यह ताल प्रत्येक पर्व, उत्सव के आरम्भ में प्रस्तुत की जाती है। इस ताल के द्वारा शुभकामनाएं प्रकट की जाती हैं। इसकी आत्मा निर्वेद है तथा इसके ताल और लय वैदिक मन्त्रों से मेल खाते हैं।

झे गु झेगण ऽ झेगु झेगण ऽ ता झे ता झे
गण ऽ ता ऽ झग नझे नझे ग ता ग झे गण
ऽ झिगटिग झेगु तग झण''

("गढ़वाली लोक–वाद्य"–छायानट)

बढ़ै की ताल को वेद मन्त्रों के साथ गाकर देखा गया तो यह निष्कर्ष निकला कि ढोल की, उत्पत्ति सम्भवतः वैदिक काल में हो गयी होगी। पाठकों को हम इस श्लोक को बढ़ै के ताल के साथ गाने का न्योता देते हैं–

"ऊं स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वास्ति नस्तार्क्ष्यो अरिळटनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दातु"

2. धुंयाल : यह देवोपासना की ताल है। इस ताल के द्वारा उपास्य का रौद्र रूप अभिव्यक्त होता है, भय इसका स्थायी भाव है। इसमें जब लय आरम्भ में द्रुत हो कर बढ़ती है तो इसे चौरास कहते हैं। और लय अति द्रुत हो जाने पर यह सुल्तान चौक कहलाती है। सुल्तान चौक भी–

(अ) भीतर चौक (आन्तरिक) (ब) भैर (वाहय) चौक में विभक्त हो जाती है। इन उपचौकों को उल्टा चौक व सुल्टा चौक भी कहते हैं। यदि गलती से अकेली भीतर चौक बजायी जाय तो उस स्थान या गांव का अनिष्ट हो सकता है। इससे बचने के लिये उसके साथ भैर चौक बजाना अनिवार्य है। धुंयाल के बोल इस प्रकार हैं :

"झेगुं झेगुं तु। झेगुं तंग तुं"।

डॉ० पुरोहित, राजेश जोशी ने अपने अध्ययन में पाया कि, अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग मात्रायें धुंयाल के लिए बजाई जाती है। बाल–गंगा घाटी के प्रसिद्ध ढोली नत्थी दास ने धुंयाल की मात्रायें इस प्रकार बताई–

ऊऽ ऽ ता तुध्रेडन् तुध्रेडन् तुध्रेडन् तुध्रेडन् ताऽ

उन्होंने पाया कि धुंयाल में एक ही ताल नहीं बल्कि कई तालों का प्रयोग किया जाता है। जैसे–

1. गणेश आवाहन ताल।
2. विष्णु आवाहन ताल।

Scanned with OKEN Scanner

3. लक्ष्मी आवाहन ताल।
4. आंचली (5 से 18 तक अनेक स्थानीय देवी देवताओं के ताल)।

3. शब्द : केशव अनुरागी ने इस ताल को "अपरिमेय महत्व" का बताया है। ढोल सागर के अनुसार यह ताल, नाद, अनुभूति और ज्ञान के सम्मिलन से पैदा हुई है। शब्द के भी तीन भाग होते हैं।

(अ) उठौंण –प्रस्तावना।
(ब) बिसौंण–विश्राम–आराम।
(स) कांसू –समापन/आहवान।

कांसू में पहुंच कर शब्द की प्रकृति अत्यन्त चंचल हो जाती है और ढोल दमौं की नाद योगिक–ध्यान समाधि की सीमा तक पहुंच जाती है। अन्त में छागल बजा कर शब्द की समाप्ति की जाती है। (ढोल सागर पृष्ठ– 35-36)

4. जोड़ : यह एक महत्वपूर्ण कलात्मक ताल है। इसमें लय का चलन एक टुकड़ा बजा कर पल भर के लिए अवरूद्ध किया जाता है तथा पुनः इसी क्रम पर टुकड़े प्रस्तुत किये जाते हैं। टुकड़ों (कृतियों) के कलात्मक संयोजन के कारण यह ताल **"रचना जोड़"** कहलाती है। (ढोल सागर पृष्ठ- 36)

5. रहमानी (अभियान) : यह ताल बारात के साथ मार्ग में आगे–आगे चलते हुये बजायी जाती है। इसके भी अलग–अलग अंग हैं।

(अ) सैंद्वार– समतल भूमि में चलते हुये।
(ब) उकाल– चढ़ाई चढ़ते हुए।
(स) उंदार– उतराई का ताल।
(द) गढ़छाला ताल– नदी, नाले व तट पर बजने वाली ताल।
(य) मछीफाट– पुल में बजने वाली ताल।

इसके साथ–साथ धार (Ridge) में पहुंचने पर कुछ देर के लिये शब्द बजाया जाता है।

6. नौबत : रात्रि के द्वितीय तथा अन्तिम प्रहरों में, मन्दिरों में प्रतिदिन तथा शुभ अवसरों पर बजायी जाती है। कुछ मन्दिरों में तो अठ्ठारह ताल की नौबत पूरी रात भर बजायी जाती है जैसे–रूद्रप्रयाग जिले में फलासी गांव के तुंगनाथ मन्दिर में।

7. चारितालिम : इस ताल का उपयोग विधान केवल शिव तान्डव नृत्य के लिए ही बताया गया है। किन्तु आजकल इसका परिवर्तित रूप पाण्डव नृत्य में प्रयुक्त किया जाता है। (ढोल सागर पृष्ठ- 93)

स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि आखिर ढ़ोल सागर का वर्णित विषय क्या है। शिवप्रसाद डबराल ने ढोल सागर के वर्णित विषय को कुछ बिन्दुओं में सारांश दिंया है :

- गिरिजा माता ने अति प्रत्याहार से तपस्या की और सृष्टि रचना सात द्वीप, नौ खण्ड और अष्ट पर्वत हुए। यहां नौ खण्डों और पर्वतों की नामावली है जो पौराणिक नामावली से कहीं–कहीं भिन्न है।
- पृथ्वी के ऊपर 7 मण्डलों की नामावली सूर्य मण्डल तक।
- सूर्यमण्डल से ऊपर के 12 मण्डलों की नामावली बैकुण्ठ मण्डल तक।
- अक्षर प्रकाश के अन्तर्गत 10 स्वरों और 19 व्यंज्जनों की तालिका।
- ढोल के 12 स्वरों की वेदणी/जाताओं की नामावली।

Scanned with OKEN Scanner

- निराकार से सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम।
- वाद्यों की उत्पत्ति और छत्तीस वादों की नामावली।
- 64 पक्षियों की नामावली जिनके सुरों का प्रयोग ढोल की ताल में है।
- दिवसों, नक्षत्रों, योगों, उपादियोगों, करणों, मासों और ऋतुओं की नामावलियां।
  यह वर्णन ढोल सागर के एक तिहाई हिस्से में फैला है शेष भाग में ढोल के 10 सुर और ताल सम्बन्धी वर्णन है।
- ढोल की बारह कसणियां चढ़ाने पर प्रत्येक अवस्था में निकलने वाली ध्वनियां।

"अरे आवजी प्रथमे कसणे चढ़ाइते,
त्रिणि त्रिणि ता ता ता ठं ठं कहन्ति
दावन्ति ढोल मुच्यते,
द्वितीय कसणी चढ़ाइतो दौ दशे चैव
कहन्ति दावन्ति ढोल मुच्यते अष्टमे कसणी चढ़ाइतो
अष्टकुली नाग बोलन्ती, कहन्ति दावन्ति ढोल मुच्यते,"

(ढोल सागर, श्लोके, 17-18 ब्रहमानंद थपलियाल)

- विभिन्न अंगुलियों से बजाने पर निकलने वाली ध्वनियां:

पारवत्युवाचः प्रथमे अंगुली कौन शब्द बाजन्ती, द्वितीये, तृतीये, चतुर्थ, पंचमे कौन शब्द बाजन्ती

(थपलियाल ढोल सागर श्लोक- 19)

- विभिन्न दिशाओं के चारों प्रहरों के चार वेदों और चार युगों के ढोल बजाने के सम्बन्ध में संक्षिप्त एवं अपूर्ण सूचनायें हैं।
- 64 पंछी, निन्यारा, झींगुर जैसे कीट तथा ढ़ेबरा (भेड़) और बाखरा (बकरी) जैसे जानवरों की ध्वनियों को ढोल से निकालने के अस्पष्ट संकेत।

(डबराल,ढोल सागर पृष्ठ 52-53)

डॉ० शिवप्रसाद डबराल का मानना है कि मौखिक परम्परा में ढोल शास्त्र का बहुत बड़ा हिस्सा खो गया है। ढोल सागर की भाषा संस्कृत मिश्रित गढ़वाली है जो तन्त्र शास्त्र के ग्रन्थों की भाषा से मिलती जुलती है।

श्री गणेशाय नमः श्री ईश्वराय नम्। श्री पारवत्युवाचः
ॐ. झे माता पिता गुरूदेवता को आदेश

(ढोलसागर, श्लोक- 1)

डॉ० डी०आर० पुरोहित और राजेश जोशी ने तालों के लिए रवांई क्षेत्र में, नौगांव, टिहरी की बाल गंगा घाटी, श्रीकोट, नागपुर में, फलासी एवं थाला–बैंड़, केदारघाटी तथा पैनखण्डा क्षेत्र के प्रसिद्ध ढोलियों से भेंटकर कुछ विशिष्ट तालों का पता लगाया है। जिसमें कई तालों का वर्णन है।

- चण्डाल तालें या चौण्ड– देवी का ताल
- पाण्डवों के ताल– नागलोकी, सरौं भूमि का बाजा, युधिष्ठर और नारायण का बाजा, युद्धगमन, स्नान, शस्याभ्यास इत्यादि अठ्ठारह ताल।
- लाता में सूरज पत्तर (मुखौटा) के अठ्ठारह ताल
- पौंणानृत्य–शादी–विवाह के अवसर पर।
- मुखौटों के अठ्ठारह ताल।
- बगड्वाळ नृत्य के तीन ताल।
- बाम्पा के पंचनाग देवता के ताल।
- गमसाली के फैला देवता के ताल।
- नीति नन्दा की नर जातरा में डोली नृत्य के ताल।
- तुंगनाथ की डोली के नृत्य ताल।
- तुंगनाथ की नौबत।
- कार्तिक स्वामी के नृत्य ताल।

Scanned with OKEN Scanner

- नागजी के नृत्य ताल।
- तिर्जुगीनारायण के नृत्य ताल।
- जोशीमठ क्षेत्र में जाख एवं कांस देवता के ताल।
- तिमुण्या के ताल।
- बिसकम (विश्वकर्मा) देवता के ताल।
- सलूड़ डुंगरा में रम्माण एवं नृसिंग के ताल।
- तुंगनाथ, मद्यमहेश्वर के डोली नृत्य।
- अगस्त्यमुनि, भोगाजीत, शाणेश्वर, रणजीत, कौलाजीत, कर्माजीत, ओड़ाजीत' कुषमाण्डा के ताल।
- बजरा नगेला के नृत्य ताल।
- बूढ़ाकेदार में कलुवा वीर के ताल।

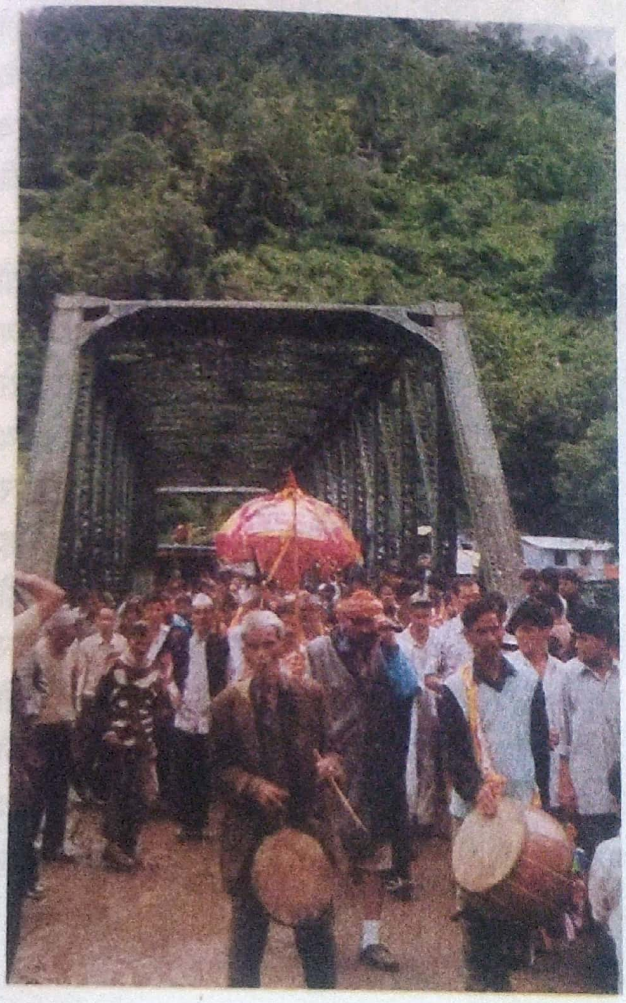

- लोस्तू–बड़ियारगढ़, कड़ाकोट और डागर पट्टियों में घण्डियाल, क्षेत्रपाल और माणिकनाथ के नृत्य ताल।
- दिशा दांगुड़ी, गोरील नृत्य, नृसिंग–भैरव के ताल।
- बसन्त गीतों के साथ बजाए जाने वाले ताल।
- कण्डार देवता के ताल।
- शवयात्रा के ताल (उत्तरकाशी)
- बौखनाग, लुद्रेश्वर एवं कपिल ऋषि के ताल।
- चार महासू देवताओं के ताल।
- इन्द्रासिणी, सहजा देवी के ताल।
- वासुदेव देवता के ताल
- दुर्योधन, शामेश्वर, कर्ण एवं पोखू देवताओं के ताल।
- मौण, तांदी, नाटी, रासौं इत्यादि के ताल। (कुल 390 तालों का वर्णन)

(शोध संकलन– डॉ. डी.आर. पुरोहित एवं राजेश जोशी)

यह सूची अपने आप में पर्याप्त नहीं हैं किन्तु ढोल की विविधता का संकेत तो देती ही है। हर ताल में भले ही मूल तालों का प्रयोग किया गया हो किन्तु मात्राओं के फेर बदल से प्रत्येक ताल का स्वतन्त्र अस्तित्व सैकड़ों वर्ष पहले बन चुका था। मात्राओं का यह प्रयोग इतना रूढ़ है कि केदार घाटी में नदी के आर–पार बसे दो गांव कण्डारा और बस्टी के पाण्डव नृत्य में तालों का अन्तर आ जाता है। कण्डारा के ढोल पर बस्टी का पाण्डव नहीं नाच सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

दमाऊं बोलन्ती

ढोल के प्रत्येक बोल की स्पष्टता के लिए दमाऊँ (दमौ) की तालों का सहयोग जरूरी है। ढोल से निकलने वाले बोल स्वयं में अपूर्ण होते हैं, उत्तरकाशी के सीमांत विकास खण्ड भटवाड़ी में कई गांवों में अकेले ढ़ोल को ही बजाया जाता है मगर दमाऊं पर मिलने वाले सहयोग को ढोल के एक छोर पर अतिरिक्त यष्टिकाओं (लांकुड़) से बजा कर या दो–दो ढोल बजाकर पूर्ण किया जाता है। लेकिन प्राकृतिक स्वर फिर भी नहीं आते। इसके विपरीत ढोल के अभाव में कुछ तालें बढ़ै, घुमैल अकेले दमाऊँ में बज जाते हैं। लेकिन सभी ताल दमाऊँ पर भी नहीं बज पाते। इस तरह देखें तो स्पष्ट है कि ढोल का पूरक दमाऊँ और दमाऊँ का पूरक ढोल है। स्वभाव व सुर–ताल के अनुसार ढोल–दमाऊँ का संबंध क्रमशः तबले के नर–मादा जैसा है। दमाऊँ के इतिहास के बारे में प्रायः ढोल सागर मौन है सिर्फ एक जगह पर उल्लेख है कि **दमाऊँ की उत्पत्ति दधिद्वीप** पर हुई थी। युवा ढोल वादक सोहन लाल (पुजारगांव–टिहरी) के अनुसार दमाऊँ का अपना सागर यानि ग्रंथ है जिस पर ज्यादा काम नहीं हो पाया है क्योंकि दमाऊँ तंत्र साधना का एक महत्वपूर्ण अंग था। दमाऊँ पर इसीलिए शक्ति यंत्र उकेरा जाता है।

तांबा या पीतल से गढ़े दमाऊँ की बनावट 1 फुट व्यास व 8 इंच गहरे कटोरे नुमा, आधा कटे संतरे के आकार को सही ताल के लिए उत्तम माना गया है। दमाऊँ के एक सिरे पर दो कंदोटियां होती हैं। इसे बैल की खाल या उपलब्ध न होने पर भैंस की खाल से भी मढ़ा जाता है। दमाऊं के मुंह को ढकते हुए उसी खाल से आगे काटकर बने रस्सी नुमा हिस्से से विशिष्ट अंदाज में इस तरह मढ़ा जाता है कि उसके मढ़ाई वाले जोड़ों पर 32 सर और 64 कोठे (खाने) बन जाते हैं। इस विशिष्ट मढ़ाई से ही दमाऊँ के ताल और सुर का नियंत्रण होता है। नमी से सुर गिरने पर हल्की आग की आंच पर इसे तपा कर सुर का मिलान किया जाता है। दमाऊँ बजाने के लिए हाथों को सीधा उपयोग नहीं होता। दो यष्टिकाओं (लांकुड़) का उपयोग किया जाता है। जिनकी लम्बाई सवा फीट होती है।

वाद्य–यन्त्र समूह (Orchestra) ढोल के साथ अन्य वाद्य यन्त्र भी संगत करते हैं। सभी वाद्य यन्त्रों से जब एक साथ संगीत निकलता है तो एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक वातावरण स्थापित हो जाता है। जो मनुष्यों को अपनी–अपनी अभिरूचि एवं क्षमताओं के अनुसार नृत्य, गीत और देव अवतरण के लिए प्रेरित करता है। इस संगीत की ताकत के जादू से युग–युगों तक यहां का लोक–मानस अभिभूत होता रहा है। मनोवैज्ञानिक गहराइयों में मनुष्य को तैराने वाला संगीत कोई साधारण संगीत तो नही रहा होगा। इस संगीत के जादू से प्रभावित होकर ढोली जाति के अतिरिक्त अन्य वर्णो ने भी इसमें गहरी रूचि दिखायी। और ज्ञानसिंह भण्डारी, नित्यानन्द शास्त्री, भजनसिंह थोकदार, मोहनानन्द खाली, सत्यप्रसाद बलूड़ी जैसे असंख्य ढोल के विशेषज्ञ समय–समय पर हुए हैं। इसका ताजा प्रमाण आचार्य चक्रधर जोशी के सुपुत्र आचार्य भाष्कर जोशी में देखने को मिलता है। जो अपने शास्त्र ज्ञान के साथ–साथ उद्भट विद्वान हैं। वे प्रतिदिन सायंकाल ढोल पर नौबत बजा कर योग साधना का अभ्यास करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

ढोल की संस्कृति

उत्तराखण्ड की संस्कृति की कल्पना करते ही दृश्यपटल पर हिमालय के धार–पाखों पर बसे गांवों में ढोल–दमौं, भंकोरे और रणसींगे बजने का दृश्य उभरता है। या किसी पहाड़ी ढाल पर ढोल–दमौं और मसक बाजे की धुन पर उतरते हुए किसी बारात का दृश्य। जीवन के हर अंग–रंग में ढोल ही ढोल का संगीत दिखता है। धान की रोपाई हो रही हो तो वहां भी है ढोल, सैल (भैंस बेलों की लड़ाई) हो रही हो तो वहां भी है ढोल, जंगल से घराट का पाट आ रहा हो तो साथ है ढोल, थौळ–मेले में पूरी उमंग बिखेरे हैं ढोल, संक्रान्त के दिन ढोल, देवी देवताओं के साथ ढोल, बार–त्यौहार की सूचना और भिन्नता बताता है ढोल, और नेता जी, डी०एम० साहब गांव में आये तो स्वागत को तैयार है ढोल, यज्ञ में ढोल। कल्पना कीजिए ढोल और ढोली समाप्त हो जाएं तो गोरील, पाण्डव पूजा, बगड्वाल, नन्दाराज जात या फिर उत्तरकाशी का माघ मेला या बैशाख के थौळ, इत्यादि कैसे लगेंगे? ढोल को यहां के सांस्कृतिक जीवन में से हटा दें–घटा दें तो एक आध्यात्मिक संकट पैदा हो जायेगा।

जरा इतिहास के पन्ने पलटें, संस्कृति के रंगीन चित्र उभर आते हैं। टिहरी राजदरबार में ब्रह्म मुहूर्त में साढ़े चार बजे नौबत बजती है। उसके बाद साढ़े पांच बजे आम प्रजाजनों को नौबत बजाने का अधिकार है। और अब पूरे राज्य की भिलंगना, भागीरथी, यमुना, टोन्स और अलकनन्दा घाटियों में नौबत के अनन्तनादों का सैलाब आ जाता है। दूसरा पन्ना पलटने पर बसन्त ऋतु में फूलों के उत्सव के गीत गाने के लिए ढोल दमाऊं के साथ गायकों की एक टोली गीत गा रही है।

आसन्ती का पाटा गौलू मैं वासन्ती का पाटा
सौंरादै का पाटा गौलू मैं गौरा रै का पाटा
कैलाशः मा कःनो रन्दू छौ भष्मासूर राजा
तै दानौ को विष्णू जी न कनू भष्म करी

भष्मासुर की कथा के बाद बसन्त के फूलों

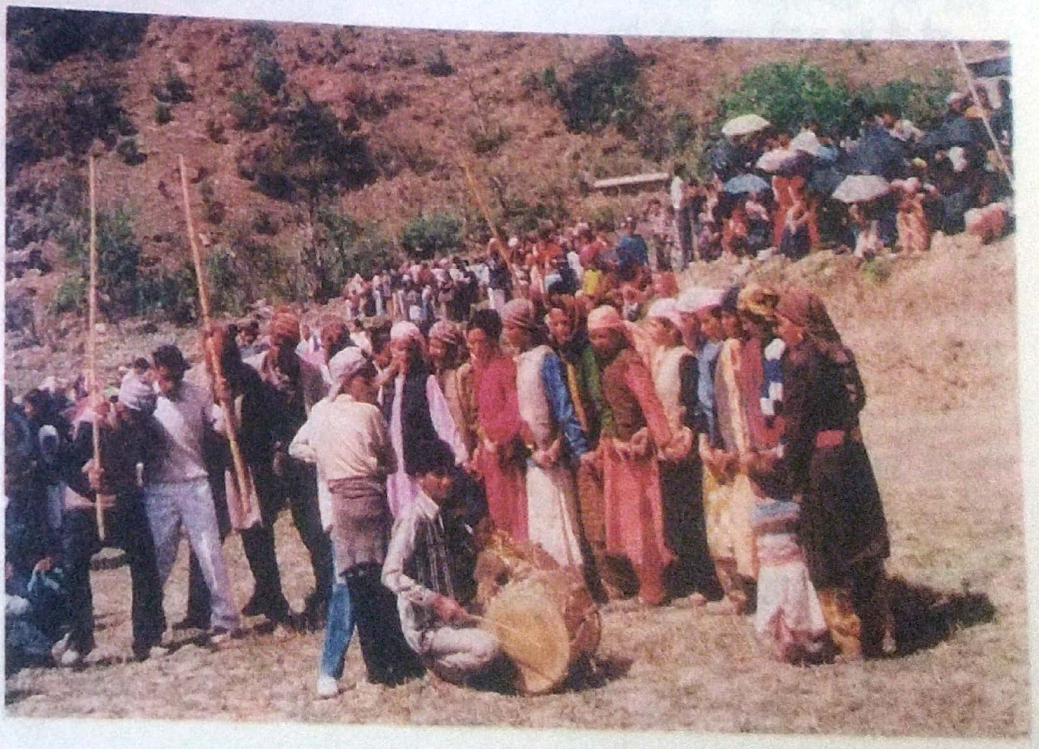

Scanned with OKEN Scanner

और धरती.आकाश की वन्दना होती है :–

"धरती माता की, औ ऋतु सेवा बोदान
उपरी आगास की, औ ऋतु सेवा बोदान
रैत परजा की, औ ऋतु सेवा बोदान"

कृष्ण बलराम, हरिशचन्द्र, फ्यूंली, रामी, पिरमा, तीलू, जस्सी जैसे वीरों व वीरांगनाओं की माधुर्य करूणा और मानव सुलभ, चंचल भावना, भावनाओं भरी गाथायें कैसा सार्वभौमिक साहित्य भरा था इन गीतों में। कृष्ण बलराम से कह रहे है :

"चल भुला बलराम बै मूरूल्या ह्वै जौला"

या ससुराल के अमैत्रीय संसार में रह रही खुदेड़ बाला बसन्त में गा रही है।

"बास–बास म्योलड़ी बै, मेरा मैत्यों का देश
मेरी बोयी सूणली ब्वै, बाबा तैं भेजली"

बचपन मे ही अनाथ हुये सदेऊ–सदेई भाई–बहिन की विपदा की कहानी सुनकर तो श्रोता अति भावुक होकर फूट–फूट कर रो पड़ते थे।

"ओऽ जै देउ न रचे गंगा जी को मैत
औ जै देउ न रचे माछी को मैत
तैई देव न रचे सदेऊ–सदेई वै
सदेऊ सदेई छा सी छोरा–छापरऽऽ"

इन गीतों में रचे गये साहित्य को विकास की राहों पर डगमग पैरों से चलता हुआ, आत्म बंचना से पीड़ित हमारा समाज न तो समझ पाया और न सम्भाल ही पाया।

इतिहास के एक पन्ने पर ढोली बगड्वाल नृत्य में आयी देव आत्माओं को विदा करते हुये कह रहा है

"जसीला ह्वेक रयां मेरा भूमि का भूम्याळ
खेती खेतरपाळ, बैदीक बुलौलु
पूजीक पठौलू, जसीली स्वांली खांया
अफू जस पाया, हमू जस द्याया।
थोड़ा दीन्यू भौत माण्या, मैत्यो को मण्डाण
जसीलों ह्वैक राया,
घोड़ी ताजा रौली फिर भेंट होली।
घोड़ी हारि जौली, त या भेंट ह्वैगे।
ऋतु बोडी ऐ जान्दी दाई जसो फेरो,
पर मुआं मनखी बौड़ी कः नी औन्दा।
अजाण की पूजा, सजाण माण्या
भंकोरी रूंणाट द्यूलो, तामा बीज शब्द"

(टीकाराम भट्ट : "गढवाल का डिम–डिम ढोल दमौं, युग सम्वाद 1996- 33-38)

रवांई घाटी में मौण (मछली मारने का उत्सव) हो रहा है हजारों लोग एक साथ कमल नदी में मछली मारने की तैयारियां कर रहे हैं चौक में नर्तक जुड़ने शुरू होते हैं। और चल पड़ता है ढोल की ताल पर गीत व नृत्य।

मैत दादू, बल रःण जाणः मौणः , मेरा दादू रे ऽऽ..
ऐगी दादू बल, बरसू की मौंण, मेरा दादू रे ऽऽ...
दे दे दादू मेरा, कोण्डी कूपीड़ा,मेरा दादू रे ऽऽ.....
दे दे दादू मेरी, हाथ की महेन्डी, मेरा दादू रे ऽऽ....
मै त दादू बल रःण जांण मौण, मेरा दादू रे ऽऽ ....

और पश्चिम की ओर देखते हैं कि टौन्स घाटी में बूढ़ी दियांथी (दिवाली) का उत्सव मनाया जा रहा है। ढोल–दमाऊ की टंकार बजती है, रंणसिंगे की मधुर ध्वनि और देवा महासू की हारूल प्रारंभ होती है।

मोड़ी रे मोड़ाई, मोड़ी केड़ी मोड़ाइ,
चारि भाई मासू की हारूल लगाई।

या फिर देवलसारी से लुद्रेश्वर देवता की जात तियां गांव होती हुई देवराड़ा डांडा जाने वाली है, उस क्षेत्र की धुन बजती है और तान्द शुरू होती है

Scanned with OKEN Scanner

डांडा की जातरा मेरी जिजुमा बठिया,
नैड़ा–नैड़ा ऐगे मेरू बीजूमा बठिया।

ढोल के सहस्त्रों लोक कलारूप इतिहास में देखने को मिलते हैं। इनमें से कुछ को स्व. सेवादास जी (पट्टी गोनगढ़ बाल गंगा घाटी) ने यूं भी वर्णन किया कि ढोल विधा पर अधिकार के लिए

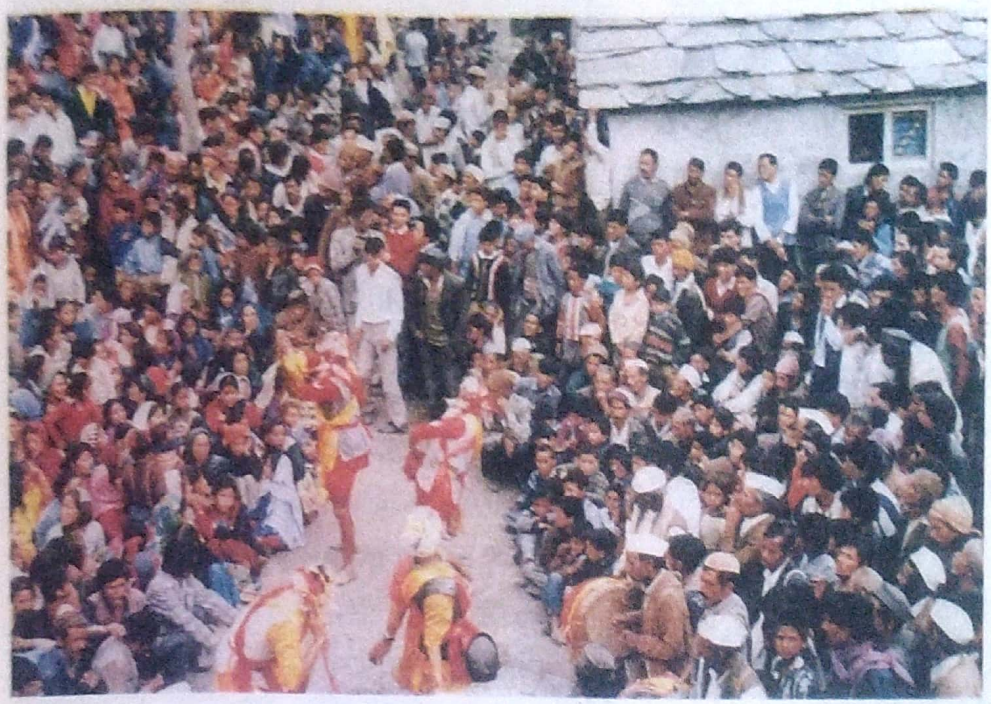

शास्त्रार्थ हो पड़ता था–कहीं भी और कभी भी। सवर्ण ढोली भी शास्त्रार्थ के लिए पेशेवर ढोलियों को ललकारते थे वे बताते हैं कि .....

एक दन्त कथा अक्सर सुनने को मिलती है कि नित्यानंद शास्त्री और ज्ञान सिंह भण्डारी बारात में ढोल बजा रहे थे। धार में स्वागत में आये वधू पक्ष के ढोली से अन्धेरे में ही तालों पर शास्त्रार्थ छिड़ गया। चलते–चलते वधू पक्ष का ढोली शास्त्रार्थ हार गया। फिर ढोल की सांकेतिक भाषा में वधू पक्ष के ढोली ने नित्यानंद शास्त्री व ज्ञानसिंह भण्डारी से पूछा– "मैं अपनी हार स्वीकार करता हूँ" किन्तु मेरे जैसे ढोल विद्या के महारथी को परास्त करने वाला तू किस दास का बेटा है? जाहिर है उस दिन से नित्यानंद शास्त्री ने ढोल बजाना छोड़ दिया, शेष इतिहास हमारे सामने है। कई जगहों सवर्णों ने धीरे–धीरे ढोल विद्या छोड दी।" ढोल विशेषज्ञ भी शास्त्रार्थ से बचने लगे। पहले ढोल को सर्वशक्तिमान सरस्वती के रूप में पूजा जाता था। क्योंकि ढोल शब्द है और शब्द ही ब्रहम है। शब्द ही सरस्वती है। इसलिये मान्यता थी कि जिस घर में ढोल होगा और बजेगा वहाँ सरस्वती निवास करेगी। अधिकतर लोग अपने घरों में ढोल रखते थे, ऐसे घरों में अशुभ और भूत–प्रेत पास भी नहीं फटकते, ऐसा लोक विश्वास था। ढोल की पूड़ पर सरस्वती का श्री यन्त्र बना होता था। किसी भी कार्य में पूजा के पहले और पूजा के बाद में ढोल को पिठांई दी जाती थी जो प्रथा आज भी है।

इतिहास में कुछ और तथ्य भी सामने आये हैं कि थौळ–मेलों में गांव–गांव से लोग पंक्तिबद्ध, होकर ढोल–दमाऊं, रंणसिंगा और भंकोरे की धुनों के साथ मेला स्थल में प्रवेश करते थे। फिर ढोल की तालों पर मल्ल युद्ध होता था। ऐसे मल्ल युद्धों में विजयी भड़ों (बीरों) को राजदरबार के लिए सैनिक चुनने की परम्परा भी लम्बे समय

Scanned with OKEN Scanner

तक रही। शादी के अवसर पर दो पक्षों के ढोली मिलते ही चौक में पैंसारा नृत्य प्रस्तुत करते थे। जिसमें कलात्मक तरीके से एक दूसरे का अभिवादन, फिर वार्तालाप एक खास अन्दाज में लगभग एक घन्टे तक होता था। ढोल के नाद की तांत्रिक शक्तियां भी थी। ढोल के ताल बजाकर मकान के छत की पठालों को गिरा देना, दुश्मनों का अहित करना या प्रतिद्वन्दी ढोली के ढोल की पूड़ फोड़ना आम बात थी। ढोल और दमाऊं में एक विस्तृत सांकेतिक भाषा का भी प्रचलन था जिसका प्रयोग प्राचीन काल में युद्धभूमि में सन्देश भेजने के लिए किया जाता था। कालान्तर में इस विद्या का प्रयोग ढोलियों में आपसी व्यवहार की सामान्य घटनाओं के लिए किया जाने लगा। गांव में किसी की मृत्यु हो जाने पर उसकी सूचना पड़ोस के गांव में भेजने के लिए दमाऊं का प्रयोग किया जाता रहा है।

संस्कृति के अनुष्ठानिक पक्ष में तो ढोली और पंडित की भूमिका बराबर थी। घर के अन्दर की पूजा पंडित जी द्वारा और बाहर की पूजा ढोली द्वारा एक साथ शुरू होती थी। उधर पंडित जी का **"ऊँ केशवाय नमः गोविन्दाय नमः, माधवाय नमः, नारायणाय नमः"** प्रारंभ हुआ इधर ढोल पर बढ़ै और धुंयाळ की ताल बजने लगती। दोनों में से एक के न पहुँच पाने की स्थिति में पूजा नहीं हो सकती थी। ढोली को मन्दिर के परिसर में कुछ विशेष स्थानों तक प्रवेश की छूट थी। इस अवसर पर देवताओं की आत्मायें अवतरित होकर सर्वप्रथम ढोली को ही गले लगाती थी।

ढोल का अध्यात्म : ढोल–दमाऊं की नाद प्रणाली संगीत मात्र नहीं है। ढोल योग साधना, ध्यान धारणा, परालौकिक शक्तियां प्राप्त करने की आध्यात्मिक प्रणाली भी है। ढोल की ताल अथवा डौंर थाली के नाद के साथ मंत्रात्मक गीतों को गाने से मनुष्यों के शरीर में देवात्मायें अवतरित हो जाती हैं। इसी क्षण में मनुष्य दैवीय शक्तियों का अधिकारी बन जाता है। कुछ क्षेत्रों जैसे विकासखण्ड गैरसैंण में ढोल को देवता माना जाता है। ढोल को विशिष्ट ढंग से पूजा के बाद बजा कर किसी के भी भूत–भविष्य की बातें, कष्ट निवारण के उपाय बताये जाते हैं। भूत और भविष्य के गर्भ में झांकना, भवनों की दिवारों के अन्दर झांककर वहां

Scanned with OKEN Scanner

रखे कपाड़ को पहचानना ये सारी शक्तियां प्राप्त करने के लिए ढोल के संगीत की एक सुनियोजित प्रणाली से गुजरना पड़ता है। दिन भर थके हुये और खीजे हुए लोग रात्रि के दूसरे पहर में बेसब्री से **"9 पत्तन और 22 पड़तालें"** अष्ट सिद्धि–नौ निधि, और चौदह भुवनों की अभिव्यक्ति करने वाली नौबत की प्रतीक्षा करते थे। नींद के आगोश में थकान मिटाने के बाद प्रातः काल फिर नौबत की धुनों पर जागते थे। दिन भर के लिए संगीत की ऊर्जा अपने मन–मस्तिष्क में समाए हुये। असाध्य से असाध्य मानसिक रोगी भी ढोल की आध्यात्मिक चिकित्सा पद्धति से नीरोगी हो जाते थे। ऐसी बीमारों को ढोल के गीत और संगीत में जीवन की उलझी हुई पहेलियों का उत्तर मिल जाता था। एक सुलझे हुये संगीत दर्शन में ढोल के संगीत और साहित्य संसार में यहां के लोक जीवन की ताल लय, आनन्द और शोक, सुख और दुःख, संघर्ष और सफलता, आशा और निराशा–सभी पहलुओं की अभिव्यक्ति थी। यही कारण रहा होगा कि उत्तराखण्ड के निवासियों का आध्यात्मिक स्वास्थ्य उच्च कोटि का था। वर्ष के हर पर्व तथा त्यौहार पर अनुशासित घेरे में नाचते हुये वह ढोल गाथा के सन्देश को समझाता था और उससे जीवन की सीख भी लेता था।

"अमर नी रंया माता यी प:ड़ा परवाण
अमर नी रंया माता राजा माराजा
हम् कैसी कैई अमर ह्वे जाला
माता मेरी मैणावती"

इस महान कला को जीवित रखना, पल्लवित और पुष्पित करने का कार्य था ढोली समुदाय का। ऐतिहासिक प्रमाण तो नहीं मिलते किन्तु व्यवहारिक प्रमाणों को देखकर लगता है कि इन ढोलियों में उच्चकोटि के कलाकारों की भरमार थी। गीत संगीत ही नहीं इनकी भाषा भी त्रिआयामी, रूपक और उपमाओं से सराबोर होती थी। ऐसी शब्द–सामर्थ्य अन्य वर्गों में देखने को नहीं मिलती है। पिता से पुत्र ने ढोल विद्या सीखी, "पिता–गुरू परम्परा" से समय–समय पर इस कला ने ऐतिहासिक कीर्तिमान स्थापित किये, राज दरबारों में ढोली को प्रतिष्ठा मिली और जन्म दर जन्म ये कलाधर्मी समाज के हृदय सम्राट बनकर रहे ढोल और ढोली !

ढोल के प्रयोग धर्मी

"केशव अनुरागी कहता था, इसके बीसियों ताल हैं।
सैकड़ों शब्द और कई मर–खप गये, हमारे पुरखों की तरह
फिर भी अलग–अलग ताल संसार में आने जाने के"

प्रसिद्ध कवि मंगलेश डबराल की कविता "केशव अनुरागी" के अंश जों ढोल की महिमा वर्णित करते हैं, न जाने कब किवदन्ति बन जाते लेकिन समय–समय पर कुछ प्रयोगधर्मियों के प्रयास ढोल को बचाने में रहे हैं।

यहां स्व० सेवादास (बाल गंगा घाटी), स्व० मिसाल दास ग्राम–संतेराखाल, देवप्रयाग, स्व० गेन्दा दास, स्व० समैदास धारकोट, स्व० भजनीवासी कण्डारा केदार घाटी, स्व० जोगीदास (बावई) जैसे–सहस्त्रों लोगों का स्मरण आवश्यक है। जिन ढोलियों ने स्थान और समय के अनुसार ढोल के तालों पर प्रयोग किये तथा नयी–नयी कृतियां उसमें जोड़ी। तभी तो इतने वृहद संगीत शास्त्र का जन्म हुआ।

इन प्रयोगों और प्रदर्शनों के आधार पर अलिखित **'ढोल सागर'** नामक ग्रन्थ का निर्माण हुआ जिसे समय–समय पर कुछ विद्वानों ने लिपिबद्ध करने का प्रयास किया। इस दिशा में ब्रह्मानन्द थपलियाल (1932), भवानीदत्त धस्माना (1935) व समकालीन तोताकृष्ण गैरोला के प्रयास अग्रणी रहे। बीसवीं सदी में इस विद्या पर अमेरिका में रह रहे प्रोफेसर अनूप चन्दोला, प्रसिद्ध संगीतकार केशव अनुरागी, संस्कृति कर्मी मोहनलाल बाबुलकर, शिवानन्द नौटियाल, प्रोफेसर विजय कृष्ण बेलवाल तथा न्यू इग्लैण्ड विश्वविद्यालय ऑस्ट्रेलिया के डॉ० एन्ड्र ऑल्टर, गुणानन्द पथिक, अबोधबंधु बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय के डॉ०डी०आर०पुरोहित एवं राजेश जोशी, अगस्त्यमुनि महाविद्यालय के डॉ० अनुसूया प्रसाद मैठाणी तथा नक्षत्र वेधशाला देवप्रयाग के आचार्य भाष्कर जोशी जैसे मनीषियों ने गहन शोध किया। भंवानी दत्त धस्माणा एवं ब्रहमानन्द थपलियाल द्वारा छपाई गयी ढोल शास्त्र पुस्तकों को स्व० शिव प्रसाद डबराल ने "ढोल सागर" पुस्तिका में रखकर जीवन दान दिया (वीरगाथा प्रेस सम्वत् 2052)

स्व० केशव अनुरागी ढोल सागर के अधिकारिक विद्वान थे किन्तु उलझे हुये जीवन की विसंगतियों ने उनके द्वारा ढोल पर लिखी पुस्तक को अधूरा और अप्रकाशित छोड़ दिया। उनकी इस पुस्तक के अप्रकाशित अंश इधर–उधर अन्य पुस्तकों में "साभार" अवश्य छप गये। स्व० तोता कृष्ण गैरोला ने ढोल सागर पर तीन चार सौ पृष्ठ की एक पाण्डुलिपि तैयार की थी, जिसे 1982-83 के आस–पास बमण गांव स्थित उनके पुस्तकालय में देखा गया था।

प्रसिद्ध जनकवि लोक नाटककार स्व० गुणानन्द "पथिक" (डंगवाल) ग्राम खसेती, टिहरी गढ़वाल ने न सिर्फ गांव–गांव घूमकर पर्यावरण रक्षा, छुआ–छूत विरोध के गीत गाये न सिर्फ गढ़वाली रामायण की 3 दर्जन से ज्यादा गढ़वाली छन्दों में रचना की वरन उनकी अप्रकाशित पुस्तक **"हम गढ़वाली"** में उन्होंने ढोल के बोलों को नये सिरे से परिभाषित किया उन्होंने पहली बार ढोल के साथ होने वाले नृत्यों चवार्या, पाण्डव लीला, पैंसारा, सरौं को शारिरिक मानसिक कसरत के पक्ष की महत्ता की पहचान करायी है। स्व० गुणानन्द पथिक स्वयं ढोल को बहुत अच्छे ढंग से बजाते थे।

Scanned with OKEN Scanner

इसी तरह रामचरन जुयाल, पौड़ी ने हुड़क को देशी वाद्य यन्त्रों के साथ बजाने और मोछंग के रुचिकर प्रदर्शन किये। जुयाल जी दमाऊँ को दूसरे ताल वाद्यों के साथ संगत लायक बनाने के लिये प्रयोग कर रहे हैं। गढ़वाल की लोक संस्कृति विशेषकर भाषा साहित्य और लोकगायन को बुलंदी तक पहुंचाने वाले युगपुरूष नरेन्द्रसिंह नेगी जी जहां लोकगायन को नये आयाम दिये हैं वहीं ढोल और ढोली को प्रोत्साहित करने के कई प्रयास उन्होंने किये हैं। पहला ऑडियों कैसेट "नौराता मण्डांण" उनके प्रयासों से ही निकाला गया और आकाश वाणी में ढोल को बढ़ावा देने के उनके अथक प्रयास रहे।

युवा लोक गायक प्रीतम भरत्वाण ने भी ढोल के 70 जागर, पवाड़ों का संकलन विभिन्न क्षेत्रों से किया है। जिनमें एक–एक पवाड़े 36-36 घंटे तक गाये जा सकते हैं। अब तक के सभी लोकगायकों में प्रीतम भरत्वाण एक मात्र गायक है जो भरपूर जागर पवाड़ों का उपयोग कैसेटों में करते हैं। स्वयं प्रीतम नजीबाबाद से उच्च श्रेणी हुड़क वादक विशेषज्ञ हैं, वे ढोल–दमाऊं और पारम्परिक लोकवाद्यों को बजाने के सिद्धहस्त कलाकार भी हैं। प्रीतम के शौकिया संग्रह में जौनसार–जौनपुर के सैकड़ों ढोल के ताल–सुर के बोल भी संरक्षित हैं।

ढोल सागर पर पुजारगांव, टिहरी के नौजवान ढोल वादक सोहनलाल श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम के संचार विभाग में कार्य तो कर ही रहे हैं इसके अलावा सोहनलाल पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने ढोल पर पहली कैसेट "नौराता मण्डाण" निकाली। ढोल के शास्त्रीय ज्ञान की गहनता से निरन्तर अध्ययन कर रहे सोहनलाल 61 ताल और 41 लोक नृत्यों को ढोल पर बजाते हैं और बेहतर अभिव्यक्ति कर औरों को समझाने की क्षमता रखते हैं। सोहनलाल श्री चन्द्रबदनी में ढोल वादकों के सम्मान हेतु व्यवस्थाएं करने के साथ नौजवान पीढी को ढोल वादन की ओर प्रेरित व संगठित करने में लगे हैं।

'मंच कृति' नामक संस्था लखनऊ में गढ़वाल के प्रवासी हरीश बडोला एवं संगम बहुगुणा भी गढ़वाली वाद्य यंत्रों की गढ़वाली भाषा में लिपि बनाने का प्रयास कर रहे हैं। इसके साथ वे 5 साल का गहन शोध भी करेगें। जिसकी शुरूवात वे मई–जून 2001 से कर चुके हैं।

इसी क्रम में वरिष्ट लोक गायक चन्द्र सिंह राही भी ढोल–दमाऊं के वाद्य–वृन्द समूह पर गहन शोध और प्रयोग कर रहे हैं।

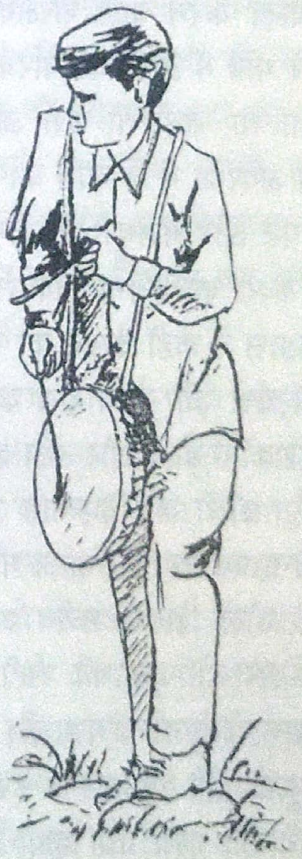

Scanned with OKEN Scanner

योगक्षेमं वहाम्यहम्

लोक जीवन के हर क्षण, हर अवसर पर उत्प्रेरक, सहचरी, सहकर्मी व संगीत के साथ-साथ तंत्र मंत्र की इस विद्या को जीवित रखने वाले **"ढोली समुदाय"** के लिए ढोल धर्म ही नहीं आजीविका भी था। कर्मकाण्डी पण्डित की तरह ही ढोली का भरण-पोषण ढोल बजाने के बदले मिलने वाले कड़वार से चलता था। हर फसल पर निश्चित मात्रा में मिलने वाले अन्न का नाम ही कड़वार था। गेहूं की फसल पर 2 से 4 पूले (गडरी) गेहूं तथा धान की फसल पर 2 से 4 सूप धान प्रति परिवार द्वारा ढोली को मेहनताने के रूप में दिया जाता था। इसके अतिरिक्त बार-त्यौहार और शादी-विवाह, देव पूजन के अवसर पर मिलने वाले उपहार भी उसे मिलते थे। खेती-बाड़ी करने वाले संरक्षकों के 50-60 परिवारों वाले गांव में ढोली का परिवार निश्चिंतता से पल जाता था, तभी तो उसे ढोल विद्या को इतनी उन्नत अवस्था में ले जाने का अवसर मिला होगा। भूखे पेट और मजबूरी में जीने वाले लोगों द्वारा किसी कला का इतना विकास किया गया हो, ऐसा इतिहास में कहीं देखने को नहीं मिलता। किन्तु हजारों वर्षों की यात्रा तय करने के बाद पिछले 2-3 दशकों में ढोली और ढोल की अकथनीय दुर्गति हुयी है। ढोली को विपन्नता और अपमान का जीवन जीना पड़ रहा है। आज भौतिक प्रगति के पैमाने पर ढोली सबसे गरीब और मजलूम समुदाय है, जिसे दो जून की रोटी जुटाने के लिए खासे संघर्ष से गुजरना पड़ा है। उसने ढोल विद्या के बहुमूल्य हीरे जवाहरात इस यात्रा के दौरान खो दिये हैं। ऐसा क्यों हुआ इसके लिए पूरे उत्तराखण्ड के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक इतिहास पर नजर डालना आवश्यक है।

यक्ष किन्नर और विद्याधरों से विरासत में मिली इस संगीत विद्या को प्रचुर राज्याश्रय राजशाही के दौरान मिलता रहा। नाग, कत्यूरी, चन्द और पंवार वंशों के शासन काल तक यह विद्या अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों जैसे-यज्ञ आयोजन, भवन निर्माण, स्वर्णकारी की तरह खूब फलती-फूलती रही। यहां के निवासियों के लिए पशुचारण और खेती-बाड़ी के लिए जल, जमीन और जंगल का असीमित विस्तार था। प्रचुर मात्रा में अन्न और प्रचुर मात्रा में मांस हेतु बकरियां थी। समाज में किसी सगे-संबंधी के घर पर आ जाने जैसे छोटे अवसर पर भी एक बकरी मारकर खायी जाती थी। घी-दूध की प्रचुरता थी, समाज का हर वर्ग खुश था।

1803 में गोरखाओं के आक्रमण के बाद यहां की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी। गढ़वाल राजवंश को टिहरी रियासत तक सिमटना पड़ा और ये ही हाल कुमाऊं में चंद वंश के भी हुए। अंग्रेजों ने इस क्षेत्र में प्रवेश करते ही यहां के युवकों को जंगलात में लकड़ी ढोने के लिए भर्ती कराना प्रारंभ कर दिया, यहां के जंगल और जमीन पर अपना अधिकार घोषित कर दिया। स्वतन्त्र पशुचारण और खेती-बाड़ी करने की संभावनायें समाप्त हो गयीं। कुछ समय बाद अंग्रेजों ने यहां के युवकों को सेना और पुलिस में भर्ती करना प्रारम्भ किया परिणाम स्वरूप यहां की युवा शक्ति धीरे-धीरे गांव से बाहर पलायन करने लगी। गांवों में एक

ओर तो श्रम शक्ति की कमी उभरी और दूसरी ओर खेती तथा पशुचारण की अनिश्चित और जोखिम भरी कष्टकारक आर्थिकी से लोगों का मन उचटकर नौकरी की अर्थव्यवस्था में रमने लगा। कालान्तर 1960 में हैजा के महाप्रकोप में यहां की तीन चौथाई जनसंख्या समाप्त हो गयी। जिससे अर्थतंत्र का बचा–खुचा आधार भी नष्ट हो गया। जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ी और आजीविका की तलाश में शहरों की ओर पलायन बढ़ गया। बीमारियों पर नियंत्रण होने लगा। घर से सेरों (क्यारियों) की तुलना में चपरासी की नौकरी ही बेहतर मानी जाने लगी।

अब खेतों में अन्न उपजाने वाले, नित नये खेत खोदने वाले और दस–दस पन्द्रह–पन्द्रह भैंसों के समूह व हजार पांच सौ बकरियों व गायों को पालने वाले लोग गांवों में नहीं रहे। परिणाम स्वरूप कृषि और पशुचारण पर आधारित अर्थव्यवस्था चौपट हो गई। दूसरी ओर ढोलियों की जनसंख्या भी बढ़ती गयी। न उनके पास भूमि आयी और न ही उन्होंने शहरों की ओर पलायन किया। संरक्षक परिवारों की जजमानी बंट जाने से ढोली का डड्वार घटने लगा। ठाकुरों (सवर्ण संरक्षक) और ढोलियों के बीच डड्वार को लेकर तनाव होने लगा। ठाकुर और ढोली दोनों आर्थिक विपत्तियों में घिर गये। डड्वार की प्रथा शिथिल होने लगी और बीसवीं सदी के सातवें, आठवें दशक में उत्तराखण्ड के आधे से ज्यादा गांवों में डड्वार प्रथा समाप्त ही हो गयी।

अनाज की जगह पर ढोलियों को पेशेवर कलाकारों की तरह मानदेय देने की व्यवस्था भी स्थापित नहीं हो पायी और शादी के अवसर पर मिलने वाले "लगमान–मिछौली" इत्यादि की राशि भी नहीं बढ़ी। सरकार ने भी ढोली की सुध नहीं ली। अन्य पारम्परिक शिल्प व कलाओं को संरक्षण देने के लिए सरकारों ने आर्थिक मदद दी मगर ढोल को आज भी शासक–शासन व्यवसाय नहीं मानता ना ही ढोल वादकों को ढोल परम्परा की बेहत्तरी के लिए कभी कुछ आर्थिक या अन्य मदद दी गई।

अपसंस्कृति के आक्रमण : शहरों की चकाचौंध वाली संस्कृति से मंत्रमुग्ध हो कर यहां का युवा पलायन करने लगा और "पहाड़ी भूला या दाजू" की दृष्टि से पहचाने जाने की प्रवृति ने पहाड़ी युवा मन में कुण्ठाओं को जन्म दिया। वह अपनी भाषा, अपने अनुष्ठान, अपने देवी–देवताओं, अपने पहनावे, श्रृंगार, खान–पान और अपनी कलाओं को अवैज्ञानिक, असामायिक और कुरूप समझने लगा। उसे अपनी जाति नाम पर भी हीन भावना हुई। और उसने अपना जाति नाम शर्मा और वर्मा लिखना प्रारंभ किया। शहरों की वर्जना विहीन संस्कृति, वहां की नौकरी, वहां का संगीत नृत्य, गायन ही उसे वास्तविक लगने लगा। अपनी परम्पराओं पर उसने अन्धविश्वास और घटिया स्तर होने का लेबल चिपका कर उन्हें पूरी तरह नकार दिया।

अब समुदाय की नई पीढ़ी लोहार, बढ़ई और मिस्त्री समुदायों पर तो कुछ आश्रित भी रही किन्तु ढोल को एक वृथा विज्ञान, वृथा शास्त्र समझा जाने लगा। ढोली को कहा जाने लगा कि "बजाना है तो बजाओ नही तो घर जाओ" और फिर धमकी भरे अन्दाज में "कैसे नहीं बजाओगे तुम"। ढोल और ढोली के प्रति सम्मान में गिरावट से ढोली की क्या दशा हुई सैंकड़ों घटनायें रिकार्ड की गयी और कई तो दिल दहलाने वाली भी है।

Scanned with OKEN Scanner

एक गांव में तो इस इक्कीसवीं सदी में भी ढोली से नौ दिन का मण्डाण बजवाकर सिर्फ 151/-रू० की राशि ही भेंट की गई। ढोलवादक कलाकार के लिए ढोल में न तो 'पैसा रहा और न सम्मान ही बचा' इसीलिए ढोली समाज अन्य पेशों में चला गया, जिसे वे ढोल के साथ-साथ करते थे। कुछ लोग सरकारी नौकरियों में चले गये और थोड़े से लोग अब ढोल बजा रहे हैं। उनका भी इस विद्या का ज्ञान बहुत गहन नहीं रहा। **ढोल विद्या के प्रकाण्ड विद्वान आज भी ढूढ़ने के बाद मिल जाते हैं किन्तु उनमें से 99 प्रतिशत लोग 60 वर्ष की उम्र पार कर चुके हैं।**

वर्तमान स्थिति : श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम, अंजनीसैंण द्वारा जनवरी-फरवरी 2001 में **"ढोल वादकों की वर्तमान स्थिति"** पर एक सर्वेक्षण किया गया। यह सर्वेक्षण अध्ययन टिहरी, चमोली और उत्तरकाशी के 309 ढोली परिवारों एवं क्रमशः 58, 72, 31 गाँवों में सर्वे किया गया। जिसमें वर्तमान में केवल 45- प्रतिशत ढोली ही ढोल बजा रहे हैं। इन लोगों की औसत कृषि जोत मकान की जगह छोड़कर 5 नाली प्रति परिवार है, जो ज्यादातर असिंचित हैं। परिवार के 52 प्रतिशत लोग इस समय सिलाई के व 42 प्रतिशत मजदूरी के सह आजीविका कार्य करते हैं। इन परिवारों में शिक्षा दीक्षा के बावजूद पहुँच के अभाव में अभाव में कुल 7 प्रतिशत लोग ही सरकारी नौकरियों में हैं।

ढोली समुदाय की व्यवसायिक स्थिति प्रतिशत में

- नौकरी – 1.19 प्रतिशत
- खेती / मजदूरी / ढोल – 3.59 प्रतिशत
- सिर्फ ढोल – 1.19 प्रतिशत
- मजदूरी / ढोल – 21.55 प्रतिशत
- सिलाई / ढोल – 36.52 प्रतिशत
- नौकरी – 7.18 प्रतिशत
- मजदूरी – 5.98 प्रतिशत
- सिलाई / मजदूरी / ढोल – 10.77 प्रतिशत
- रिंगाल / ढोल – 1.19 प्रतिशत
- खेती / ढोल – 4.79 प्रतिशत
- खेती / सिलाई – 0.59 प्रतिशत
- सिलाई – 3.59 प्रतिशत
- नौकरी / ढोल / मजदूरी – 0.59 प्रतिशत
- पेंशन – 0.59 प्रतिशत
- व्यापार – 0.59 प्रतिशत

क्र.सं.	जनपद	विकासखण्ड	कुल गांव	कुल परिवार	कुल ढोलवादक	वादकों का प्रतिशत
1.	टिहरी	जाखणीधार, देवप्रयाग	95/58	141	58	41
2.	उत्तरकाशी	भटवाड़ी	46/31	106	46	43-39
3.	चमोली	गैरसैंण	78/12	52	25	52

Scanned with OKEN Scanner

ढोली समुदाय की पारिवारिक स्थिति प्रतिशत में

- लड़की – 44.48 प्रतिशत
- लड़का – 55.51 प्रतिशत
- परिवार का औसत आकार प्रति परिवार – 5-56 (6) व्यक्ति
- अशिक्षित – 45.96 प्रतिशत
- शिक्षित – 54.25
- उपजाऊ जमीन औसत प्रति परिवार – 5.46 –नाली
- बंजर जमीन प्रति परिवार औसत – 2.42 –नाली

(सर्वे : संचार श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम 2001)

जैसा कि आम अनुमान लगाया जाता है, कि अब कोई ढोल नही बजाना चाहता इसके विपरित 309 परिवारों में से 62 युवा एवं प्रौढ़ निकल आये जो ढोल में उत्तम दर्जे का प्रशिक्षण पाकर इसे आजीविका या कला के रूप में अपनाना चाहते हैं। 70 प्रतिशत लोग घोर विपन्नता में हैं किन्तु 128 लोग आज भी ढोल बजाने में मिलने वाली आमदनी पर आंशिक रूप से निर्भर हैं।

अन्धेरे के बाद उजाला : ऐसा नहीं है कि इस सारी राह में घुप्प अन्धकार हो, अपनी संस्कृति व कला के प्रति आज लोगों की रूचि बढ़ी है। आज बड़े–बड़े शहरों, नगरों में अपनी मेहनत और बुद्धि के बल पर गढ़वाल के लाखों लोग बड़े–बड़े व्यापारी, उद्योगपति, पत्रकार, कलाकार, नौकरशाह, लेफ्टिनेंट, जनरल, मेजर जनरल, ब्रिगेडियर, कर्नल इत्यादि पद पा चुके है। अब उन्हें सुस्ताने का वक्त मिला है। श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम/प्लान परियोजना प्रबन्धक मनोज भटट के अनुसार उन्हें अपने गांव के जंगल, खेत, पानी, हवा, नृत्य–गीत और ढोल याद आने लगे हैं। यही नहीं अपनी संस्कृति के प्रति जो लगाव और चिन्तन इन लोगों का है, वैसा गांव में कम ही दिखता है। ये लोग यदा–कदा अपने परिवार सदस्य की शादी में बैण्ड बाजे के साथ–साथ ढोल की जोडी और मशक बाजा भी गांव से मंगाने लगे हैं, और सम्मानजनक पैसा ढोली कलाकारों को देने लगे हैं। एक ढोल वादक कलाकार एक हफ्ते दिल्ली में रहकर 5000/- रूपये कमाकर लाया। ढोल का वैकल्पिक बैण्ड़ या वर्तमान में आर्केस्ट्रा बनाने के लिए डी०आर० पुरोहित, अरविन्द दरमोड़ा, सुधाकर भट्ट, चन्द्रवीर गायत्री और गुड्डुलाल ने मिलकर 1996 में एक प्रयोग शुरू किया। जिस.की प्रतिक्रिया आशाजनक रही है।

ढोल और ढोली के सरोकारों को लेकर सबसे गम्भीर प्रयास श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम के **संचार समूह** ने किये। 1995 अप्रैल में ढोल पर एक विस्तृत कार्यशाला आयोजित की गई जिसमें ढोल सागर पर एक अनूठा नाटक प्रस्तुत किया गया। इस नाटक में स्व० सेवादास जी ने खुद भाग लिया.था। नाटक में ढोल की उत्पत्ति, उपयोग एवं वर्तमान के हालात का वर्णन किया गया था। इसलिये नाटक का नाम भी **"ढोल सागर"** ही रखा गया था। कार्यशाला के अन्त में एक संगोष्ठी की गई जिसमें सम्पूर्ण उत्तराखण्ड के ढोल वादकों के अलावा साहित्य, संगीत व पत्रकारिता से जुड़े लोगों ने भाग लिया ।

इस अवसर पर ढोल वादक सेवादास जी को ढोल सम्मान से नवाजा गया। श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम के पास 1977 से अपने ढोल–दमांऊ व

Scanned with OKEN Scanner

रणसिंगे भंकोरे, डौंर–थाली, हुड़क आदि लोक वाद्ययन्त्र हैं। यही नहीं वाद्य यंत्रों का जन–जागरूकता एवं सांस्कृतिक आयोजनों पर निरन्तर उपयोग भी होता है। किसी अन्य सरकारी या गैरसरकारी संस्था ने इन्हें रखने की जरूरत नहीं समझी है। इसके अतिरिक्त श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम में ढोल के कलाकारों को नियमित रोजगार भी दिया गया है। हे०न०ग०वि०वि० के पास भी अपना हिमालय ताल वाघ वृन्द है जिसकी स्थापना 1987 में डॉ० डी०आर० पुरोहित द्वारा की गयी थी, लेकिन उसे आज जीवन्त नहीं रखा गया है। आकाशवाणी नजीबाबाद ने भी अब ढोल को वाद्ययन्त्रों में शमिल कर चार ढोलियों को स्वर परीक्षा दिला अनुबन्ध पर ढोल वादन के लिये रखा है, मगर अभी तक इन कलाकारों के नियमित कार्यक्रम नही आ पाते। संस्कृति के पुनर्जागरण का एक उदाहरण वर्ष 2000 की नन्दा राजजात में देखने को मिला जिसमें सैकड़ों गांवों से ढोल–दमाऊं व सहवाद्यों के साथ नन्दा देवी, देवी–देवताओं की जात्रायें आई, एक नव वैज्ञानिक–सांस्कृतिक आस्था का पुनर्भाव हुआ, जो आगे अधिक चिरस्थाई होगा।

ढोली की आजीविका के सन्दर्भ में जाख, द्वारी, कांस, चण्डिका, इत्यादि देवी–देवताओं की 6 महीने तक चलने वाली यात्रा महत्वपूर्ण है जिसमें 50-60 हजार रूपये दो जोड़ी ढोल बजाने वाले ढोलियों को तथा यही राशि **"भान नृत्य निर्देशक"** को भी मिल जाती है। संस्कृति के लिए किये जाने वाले विभिन्न मंचीय कार्यक्रम जैसे गढ़वाल और कुमाऊं महोत्सव, उत्तराखण्ड महोत्सव, विरासत जैसे कार्यक्रमों में ढोल विद्या के कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाने लगे हैं। सन् 1999 में देहरादून में हुए विरासत में जातरूलाल ढ़ोली को विरासत सम्मान से नवाजा गया जिसमें 5 हजार रूपये की नगद राशि, एक शॉल, स्मृति चिन्ह और प्रशस्ति पत्र भेंट किया गया। टिहरी जिले के साबली गांव के निवासी उत्तमदास ढोली ने ढोल विद्या को चमत्कार और ग्लैमर प्रदान किया है। एक साथ ढोल और दमौं को बजाते हुए उत्तम दास दर्शकों को अविभूत कर देते हैं। उनके इन प्रदर्शनों से भी ढोल विद्या में लोगों की और खासकर युवाओं की रूचि बढ़ी है। हालांकि शास्त्रीय दृष्टि से ये प्रदर्शन पूर्ण नही कहे जा सकते।

वर्तमान सांस्कृतिक पुनर्जागरण के साथ ढोल के प्रति लोगों की रूचि बढ़ी है। इस रूचि को देखते हुए यह कला हजारों ढोलियों के लिए पूर्णकालिक आजीविका का साधन बन सकती है, बशर्ते इसके कलात्मक और आध्यात्मिक कलेवर को समृद्ध किया जा सके। सांस्कृतिक संसाधन के रूप में ढोल का क्षरण इस हद तक हो चुका है कि अगर इसे ऑक्सीजन प्राणवायु न दी जाय तो यह सदा के लिए मर भी सकता है। क्योंकि कोई भी शास्त्र उसके कलात्मक तत्व की वजह से ही जीवित रहता है। भले ही इस तत्व को जानने वाले लोग सीमित संख्या में हों, आजीविका को इस कला से जोड़े बगैर यह कला जीवित नहीं रहेगी। ढोल में वही चमत्कार, वही जादू और वही आकर्षण पैदा करने की आवश्यकता है जो आज से पचास–सौ वर्ष पहले थी।

इस कला स्तर को प्राप्त करने के लिए श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम अंजनीसैंण में संचार समन्वयक एवं नाटककार गजेन्द्र नौटियाल के संयोजन एवं संचालन में **25-26 मई 2001** को एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। जिसमें

Scanned with OKEN Scanner

ढोल से होने वाली आजीविका को और पुख्ता करने तथा ढोल की कला के कलेवर को समृद्ध करने के तरीकों पर विचार–विमर्श हुआ। इस कार्यशाला में लोकगायक, ढोलवादक, शोधकर्ता, संस्कृति विदों, नाटक क्षेत्र से जुड़े युवाओं ने भाग लिया। कार्यशाला में गतिविधियां आयोजित करने की कार्ययोजना बनाई गई व कुछ प्रस्ताव पारित किए गये–

1. ढोल और सम्बन्धित वाद्य यन्त्रों पर कार्यशाला– इस कार्यशाला के दो उद्देश्य होंगे।

अ– ढोल के ताल–सुरों व गीत, पवाड़ा, जागरों का लिपि–अभिलेखीकरण एवं इसके व्याकरण पर एक प्रामाणिक पुस्तक का लेखन ।

ब– ढोल की प्रस्तुतियों को संवारने के लिए इसके यन्त्रों, स्वरों, इसके नृत्य विधान, वेशभूषा एवं पथ संचालन जैसे अवयवों पर प्रयोग व निर्धारण।

कार्यशाला के दौरान गढ़वाल के विभिन्न अंचलों से प्रतिनिधि ढोलियों को बुलाकर उनके सम्पूर्ण ज्ञान को ढोल और तबले के विशेषज्ञों की सहायता से अभिलेखित किया जाय। इस संकलित ज़ानकारी को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जाय। ताकि अर्द्धशिक्षित और सीखने के इच्छुक व्यक्ति को इसका लाभ मिल सके। यह पुस्तक भविष्य में ढोल विद्या पर विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में चलाये जाने वाले पाठ्यक्रमों के लिए स्रोत पुस्तक का काम करेगी। इस कार्य के लिए कुमाऊं विश्वविद्यालयों में संगीत विभाग के प्रोफेसर विजय कृष्ण बेलवाल जी को आमन्त्रित करने का सुझाव दिया गया।

कार्यशाला को संचालित करने एवं ढोल और इसके ताल–वाद्य–वृन्द पर कार्य करने के लिए लोकगायक नरेन्द्रसिंह नेगी को प्रभारी एवं डॉ०डी०आर० पुरोहित को सहायक प्रभारी की जिम्मेदारी वहन करने का अनुरोध करने का निर्णय लिया गया। कार्यशाला में **ढोल के अतिरिक्त हुड़का, दमौं, रणसिंगा, भंकोरा, नगाड़ा, मोछंग, मशक, सिंणाई, बिणाांई, कैंसाल, मांदल, भांणा, तूरी, शंख, रामसर, अलगोजा** इत्यादि सभी वाद्य–यन्त्रों के कलाकार एवं विशेषज्ञ बुलायें जायें। वाद्य–वृन्द समूह के साथ गाये जाने वाले गीतों के अभिलेखीकरण के लिए गायन संगीत के विशेषज्ञों को भी बुलाया जाय।

प्रस्तुतिकरण के लिये नृत्य और "कोरियोग्राफी" के विशेषज्ञों को भी बुलाया जाये। इसके अतिरिक्त इस कार्यशाला में वाघ–यन्त्रों की बनावट पर भी विचार–विमर्श होगा। वाद्य–यन्त्रों के निष्पादकों के लिए साज–सज्जा एवं वेशभूषा विशेषज्ञों से कराई जाय।

2. ढोलियों के लिए दीर्घकालीन रोजगार योजना पर विचार किया गया कि ढोल से चाहे अनचाहे अभी भी हजारों लोगों को आंशिक रोजगार मिला हुआ है। क्यों न इसे बेहतर **पैकेजिंग** और नये दामों के साथ उपभोक्ताओं तक पहुंचाया जाय एवं इन कालात्मक सेवाओं का मानकीकरण किया जाय।

अ– शास्त्रीय चैनल– इस चैनल के लिए ढोल के प्रकाण्ड पण्डितों द्वारा ढोल के तालों, स्वरों और जुगल बन्दी का पैकेज बने।

ब–अनुष्ठानिक चैनल– इस चैनल में शादी–विवाह आदि अनुष्ठानों की जरूरत को देखते हुये सम्बन्धित तालों का भी पैकेज संकलित किया

Scanned with OKEN Scanner

जाय। देवी देवताओं के नृत्य में बजने वाले ताल एवं संगीत को भी पैकेज में जोड़ा जाय।

स– लोकप्रिय चैनलः– थौळ–मेलों में बजने वाले ढोल, त्यौहार और खास अवसरों पर बजने वाले ताल इस पैकेज में हों।

द– व्यावसायिक चैनलः– इस चैनल में सार्वजनिक समारोहों के अवसर पर, स्कूल, कॉलेजों में बजने वाले बैण्ड के लिए, नये–नये गीतों के साथ संगत करने के लिए, जनप्रतिनिधियों एवं बड़ी–बड़ी हस्तियों के मार्ग में स्वागत करने के लिए या जलसों और पदयात्राओं के लिए ढोल के प्रशिक्षण और आपूर्ति की व्यवस्था होगी।

ये चारों चैनल अपने ज्ञान और अनुभवों का आदान–प्रदान करके एक दूसरे को मजबूती देगें।

ढोल की सेवाओं का विपणन (Marketing)

ढोल की सेवाओं के पूर्वोक्त अनेक चैनलों से सम्बन्धित बाजार (मांग) उपलब्ध हैं। जिस हेतु निम्न क्षेत्रों में विपणन के अवसर पहचाने गये–

1. अनुष्ठान–सोलह संस्कार एवं देवी देवताओं के अनुष्ठान, नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान इत्यादि।
2. खेल एवं तमासे, थौळ–मेले एवं सांस्कृतिक महोत्सव।
3. शैक्षणिक एवं व्यापारिक, प्रशासनिक संस्थाओं में होने वाले कार्यक्रमों में मंगल ध्वनि बजाने के लिए।
4. सांस्कृतिक मंचों पर, रेडियो, दूरदर्शन, नाटकों एवं फीचर फिल्मों, वृत्त चित्रों में पार्श्व संगीत के लिए।
5. शैक्षणिक संस्थाओं में नियमित ऑरकेस्ट्रा के लिए।
6. पर्यटक स्थलों, होटलों में वादन के लिए।
7. राजनीतिक जलसों और समारोहों में पथ–संचालन एवं मांगल ध्वनि के लिए।
8. मन्दिरों एवं तीर्थों में–उत्तराखण्ड के बद्रीकेदार, गंगोत्री, यमनोत्री, हनोल, जागेश्वर, पुण्यागिरी, चितई, सेममुखेम जैसे प्रमुख तीर्थों के अलावा असंख्य छोटे–छोटे मन्दिर एवं तीर्थ हैं जहां पर समाज नियमित नौबत वादन के लिए ढोलियों की नियुक्त कर सकता है। बद्रीनाथ जैसे मन्दिर में ढोल के प्रसिद्ध वादकों को ढोल बजाना चाहिए ढोल के साथ भगवान बद्रीनाथ की वृहद शहनाई वादन तथा शास्त्रीय विधि द्वारा स्वीकार्य अन्य वाद्य–यन्त्रों को बद्रीनाथ में बजाया जा सकता हैं। यदि हरिमन्दिर साहब में शबद–कीर्तन गाने के लिए देश के प्रसिद्ध रागियों का चयन होता है तो बद्रीनाथ मन्दिर में प्रसिद्ध ढोली और सहायक कलाकारों का चयन क्यों नही?

किसकी क्या जिम्मेदारी हो

अन्तर्मंथन प्रस्ताव 25, 26 मई 2001 में वर्तमान स्थिति को विश्लेषित करते हुए महसूस किया गया कि ढोल संस्कृति को संरक्षित, सम्वर्धित करने के लिए कई स्तर पर प्रयास किये जाने की जरूरत है। अलग-अलग स्तर पर निभाई गई जिम्मेदारियां समग्र दृष्टि से इस संस्कृति को बेहतर स्थिति प्रदान करेंगी।

सरकार– इतिहास गवाह है कि कलायें विभिन्न स्तरों पर मिले प्रोत्साहन एवं राजकीय संरक्षण में ही फली-फूली हैं। पखावज हो या तबला अन्य इस बात के प्रमाण हैं। क्योंकि ढोल और उसका वाद्य-वृन्द उत्तराखण्ड के आध्यात्मिक शरीर की जीवन संजीवनी है। इसका पोषण अत्यन्त आवश्यक है। इस संगीत के मर जाने से उत्तराखण्ड में संस्कृति विहीनता की फिसलन प्रारम्भ होगी। और धीरे-धीरे यह अंचल अपराधिक मानसिकता और अमानवीयकरण के **"दर्शन"** को जन्म देगा। इसका परिणाम होगा राजनीतिक और सामाजिक अस्थिरता व सांस्कृतिक विकृतता। ऐसी स्थिति में धरती और पहाड़, नदियां, नाले व जंगल तो वही होंगे किन्तु इस प्राकृतिक सौन्दर्य के अन्दर आदमियों में खौफ छिपा होगा। इसलिए इन सांस्कृतिक कलाओं को संरक्षण देना केवल संस्कृति को दान देना भर नहीं है बल्कि समाज और देश की सुरक्षा को सुनिश्चित करना भी है। संस्कृति में विनिवेश हजारों वर्षों के लिए किया जाता है इसे तात्कालिक प्रतिफल, राजनीतिक हित अथवा आर्थिक प्रतिफल की दृष्टि से नहीं आंका जाना चाहिए। क्योंकि ढोल का स्थान उत्तरांचल की संस्कृति में वैसा ही है जैसा मानव शरीर में स्नायु तन्त्र का, इसलिये उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक नीति में ढोल का विशिष्ट रूप से उल्लेख होना आवश्यक है। जैसे कि बताया गया है कि ढोल के प्रामाणिक जानकार साठ वर्ष से अधिक उम्र के हो गये है। इनके ज्ञान को नयी पीढ़ी तक पहुंचाने के लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं।

1. शोध एवं अभिलेखीकरण
2. प्रत्येक सांस्कृतिक इकाई क्षेत्र में ढोल पर प्रयोग के लिए तीन वर्ष के भीतर दो-दो माह की कार्यशालायें आयोजित कर इस पर प्रयोग।
3. ढोल वादन को उद्यमिता विकास में शामिल कर इसके बैण्ड और ऑरकेस्ट्रा के लिए ऋण की व्यवस्था।
4. पूरे राज्य में सरकार द्वारा वित्त पोषित प्रत्येक कार्यक्रम में ढोल और इसके साथ प्रदर्शित होने वाले सरौं और छोलिया आदि नृत्यों की प्रस्तुति अनिवार्य कर दी जाय।
5. उत्तराखण्ड के कालेजों एवं विश्व विद्यालयों में ढोल को पाठ्यक्रम के रूप में शामिल किया जाय।
6. कुछ चुनिन्दा सरकारी विद्यालयों में कम से कम तीन व्यक्तियों के ढोल बैण्ड के पद सृजित किये जायें तथा गढ़वाल और कुमाऊं दो क्षेत्रीय विश्वविद्यालयों में ढोल का नियमित ऑरकेस्ट्रा स्थापित किया जाय।
7. ढोल सीखने के लिए कम से कम तीन **"ढोल साधना केन्द्रों"** की स्थापना की जाय। जिसमें युवाओं को ढोल प्रशिक्षण देकर पारंगत बनाया जाय।

Scanned with OKEN Scanner

8. ढोल के वृद्ध कलाकारों के लिए पखावज व वीणा वादकों के जैसे सरकार पेन्शन की व्यवस्था करे।

समाज का दायित्व : ढोल ने जिस समाज की सेवा की उसने पिछली शताब्दी में ढोल और ढोली को उचित संरक्षण नहीं दिया। उसे दरिद्रता से बाहर लाने के लिए कोई भी प्रयास नहीं किये। डड्वार प्रथा समाप्त होने के बाद उसके स्थान पर नकद भुगतान की वाजिव व्यवस्था नहीं की गयी। आज गांव–गांव में ब्रास बैण्ड को शादियों में बुलाकर उसके लिये तो आंख मूंद कर हजारों रूपये दिये जा रहे है, लेकिन अपने गांव के ढोली को उचित मानदेय देने में शालीन व्यवहार तक नहीं किया जाता। इस ब्रास बैण्ड का न तो कलात्मक कलेवर है और न ही यहां की वादियों और पर्वत शिखरों की लय ताल से मेल खाता है। बैण्ड में अलग–अलग अवसरों के लिए बढ़ै, धुंयाल, शब्द, नौबत, रहमानी, सैन्द्वार, उकाल, उद्यार, गढ़छाला, मछीफाट, जोड़ तथा पैंसारा नहीं बजाया जा सकता है। हमें सोचना होगा कि ढोल को अपने क्षेत्र की विशिष्ट कला समझें और इसे प्रोत्साहित करें। इस सन्दर्भ में स्वर्गीय शिवप्रसाद डबराल को उद्घृत करना प्रासंगिक होगा।

"मैं हाथ उठाकर चिल्ला–चिल्ला कर कह रहा हूँ पर कोई मेरी बात नहीं सुनता। जिस धर्म स्वरूप ढोल से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों की प्राप्ति सुलभ है, उस पुनीत धर्म स्वरूप (ब्रहमा पुत्र ढोल) का सेवा–सत्कार क्यों नहीं करते? जिनकी परम्परा सदियों तक ढोल सागर को मौखिक रूप से सुरक्षित रखती आई है, वे संस्कृति के रक्षक वन्दनीय है।"

(ढ़ोल सागर, पृष्ठ- 93)

ढोल हमारे समाज में उसी सम्मान का अधिकारी है जैसे इस देश में तबला व पखावज है। एक समय में समाज अपने–अपने घरों में अशुभ निवारण के लिए ढोल रखता था। आज हम सब मिलकर अशुभ निवारण के लिए ढोल की संस्कृति को बचायें जो हमारी पहचान भी है।

संस्कृति कर्मी : ढोल–वाद्य–वृन्द को जीवित रखना संस्कृतिकर्मियों का निहित स्वार्थ है। क्योंकि उनकी और उनकी संस्कृति की अलग से पहचान इन वाद्य यन्त्रों और उनसे जुड़े अनुष्ठान और कलाओं की वजह से ही है। उन्हें चाहिए कि संस्कृति के नारे के साथ–साथ ढोल के मर्म को समझने का प्रयास करें। इसके लिये उन्हें कठिन मार्ग से जरूर गुजरना पड़ेगा किन्तु उसके फल चिरस्थाई होंगे। उत्तराखण्ड में इस समय कार्य कर रहे हजारों संस्कृतिकर्मी यदि अपने पड़ोस में रह रहे ढोली की कलाओं को समझने का और उसे आत्मसात करने का प्रयास भर करें तो संस्कृति के प्रति उनका यही अमूल्य योगदान होगा। संस्कृतिकर्मियों को अपने आस–पास बिखरे ढोल गायन–वादन, हुड़का, डौंर–थाली पर गाये जाने वाले गीतों और गाथाओं का भी संकलन करना व उसका उपयोग नाटकों, नृत्यों व कैसेटों में करना चाहिए। सिर्फ चटकारे नुमा गीतों को लिखकर गाने के लिए मना किया जाना चाहिए। गिरीश तिवाड़ी गिर्दा इस बावत अनुकरणीय उदाहरण हैं जिन्होंने कठिन प्रयास कर पिथौरागढ़ के झूसिया–मांई की सम्पूर्ण कलाओं और वांगमय का अभिलेखन किया है।

स्वयं सेवी संस्थायें : उत्तराखण्ड में विकास की दिशा प्रशस्त करने में जुटी स्वयं सेवी संस्थाओं को अपने कार्यक्रमों में ढोली समुदाय के विकास का ऐजेण्डा भी अवश्य रखना चाहिए। यदि इन

Scanned with OKEN Scanner

ढोलियों का विकास अपनी धरती की जड़ों से जुड़े रहने के साथ–साथ होता है तो उन्हें अपनी कला के प्रति आश्वस्त होकर काम करने का मौका मिलेगा। ढोल–वाद्य–वृन्द **(Orchestra)** के कलाकारों को इस समय दो चीजों की आवश्यकता है।

1. आत्म सम्मान व
2. आजीविका की

विकास के क्षेत्र में इस समय सबसे गहन चिन्तन स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है। उन्हें यह भी सोचना है कि "संस्कृति सुहृद" **(Culture Friendly)** विकास का मॉडल कैसे तैयार किया जाय ताकि हमारे गांव में लोग कम्प्यूटर पर ई–गवर्नेंस भी करते रहें तथा संध्या और ऊषा वेला की नौबत सुनकर मानसिक शांति का लाभ भी पायें।

शिक्षण संस्थायें..... गढ़वाल और कुमाऊं विश्वविद्यालय विशिष्ट सेवायें देने वालों, किसी विद्या के प्रकाण्ड विद्वान को, नयी खोज करने वाले को मानद उपाधियां देते आये हैं। क्या ढोल कला के सम्पूर्ण आयामों का ज्ञान रखने वाले **'ढोली'** अथवा **रमोल** गाथा से लेकर **गोल्ल** देवता और महाभारत की गाथाओं को जानने वाले, अपनी हुड़की से पत्थर में कम्पन पैदा कर देने वाले जागरी को यह उपाधि नहीं दी जा सकती? शिक्षण संस्थाओं को चाहिए कि विद्यार्थियों में ढोल और उससे जुड़ी संस्कृति के प्रति रूचि और सम्मान पैदा करें क्योंकि शिक्षकों के मुंह से सुनी हुई बात को विद्यार्थी जीवन प्रर्यन्त नहीं भूलता है।

ढोली समुदाय..... ढोल के परम्परागत कलाकारों की जिम्मेदारी शायद सबसे अधिक बनती हैं क्योंकि इस धर्म क्षेत्र और कला क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये अन्य लोग तो सिर्फ रथ के सारथी हैं। लक्ष्य का भेदन तो उन्हें ही करना है। उन्हें अपना खोया हुआ आत्मविश्वास लौटाना होगा और जो कुछ ज्ञान उनके पास संचित है। उसे संजोकर नई पीढ़ी को हस्तान्तरित करना होगा। ढोल के कलाकारों ने बदलते समय की मांग को देखते हुए अपनी कला के प्रस्तुतिकरण में न तो चिन्तन किया और न उस गति से प्रयोग। यह निश्चित रूप से समझ लिया जाना चाहिए कि जब तक उनकी कला गुणवत्ता और कलेवर में ऊपर नहीं उठती उसका आदर नहीं होगा न ही वह आजीविका बन पायेगी। ढ़ोली कर्त्तव्य मानकर इस संगीत के अन्दर छुपी हुई विद्युत धारा, इसके तालों के चमत्कार और इसके स्वरों के जादू से समाज को चमत्कृत कर दें, ताकि लोग आज के प्रसंग में इस कला की कीमत को समझ सकें और अपने द्वारा दी हुयी उपेक्षा पर पश्चाताप कर सकें। यदि ढोल के कलाकार इस दिशा में काम करने के लिये कटिबद्ध हो जायं तो इस पेशे से हजारों लोगों को पूर्णकालिक रोजगार मिल सकता है। ढोल विद्या के सम्वाहन का दायित्व किसी जाति विशेष का कदापि नहीं है। अब समय आ गया है कि इस विद्या को विशुद्ध कला के रूप में तथा व्यवसायिक महत्व की दृष्टि से भी देखा जाय। ऐसी कला जिसका आध्यात्मिक और सांस्कृतिक महत्व है। ढोल की कला उन लोगों के लिए होगी जिन्हें ईश्वर ने नाद को समझने की प्रतिभा दी है। मजबूरी से अब किसी के कन्धे में ढोल नहीं पड़ेगा। एक शताब्दी से तिरस्कार की जिन्दगी जी रहा ढोल अब प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य के पथ पर आगे बढ़ेगा यह कामना ही नहीं अपितु प्रयास भी करने होंगे।

○

Scanned with OKEN Scanner

एक नजर

संचार–श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम द्वारा ढोलवादक परिवार और ग्रामीणों के साथ टिहरी, चमोली एवं उत्तरकाशी में सर्वे के दौरान संयुक्त बैठकें की गईं। इन बैठकों में ढोलवादक और ग्रामीणों ने ढोलवादक की आर्थिक–सामाजिक स्थितियों पर टिप्पणियां की जो एक साझी चिन्ता थी। संयुक्त रूप में टिप्पणियों के प्रमुख अंश यहाँ दे रहे हैं :

- अधिकांश ढोलवादक परिवारों के पास भूमि नहीं है।
- जिसके पास कृषि भूमि है भी वह उपजाऊ नहीं है।
- कृषि भूमि में सिंचित भूमि का अभाव है।
- ढोली परिवारों का कोई सामुदायिक संगठन नहीं है।
- ढोली परिवारों में देवी–देवताओं को पूजने की हद तक प्रवृत्ति है। अधिकतर धन इसी में व्यय होता है।
- ढोली परिवारों के घरेलू वातावरण में स्वच्छता का अभाव है।
- ढोल वादकों में आपसी ताल–मेल का अभाव है। ढोल या ढोलवादन व अपनी आजीविका पर कभी साझी बहसें, बैठकें नहीं होती।
- वर्तमान में ढोल वादक अपने व्यवसाय ढोल–दमाऊं वादन के प्रति जिम्मेदारी से कार्य नहीं करते।
- छुआछूत का बाहुल्य है। टिहरी और चमोली में तो सीमा की हद तक छुआ–छूत है।
- ढोलवादकों के साथ ग्रामीणों का सहयोग कम है।
- कुछ गाँवों में ढोल व ढोली को महत्व नहीं दिया जाता।
- ढोली परिवारों के साथ पहले के जैसे नाते–रिश्ते में सम्बोधन नहीं किया जाता।
- कम उम्र में शादी ढ़ोली परिवारों में आम बात है।
- यौन शिक्षा का हद तक अभाव के कारण परिवार में सदस्य संख्या ज्यादा है।
- परिवार नियोजन साधनों की जानकारी का अभाव है।
- गाँव की सार्वजनिक बैठकों में ढोल वादकों को कम ही शामिल किया जाता है। उनकी निर्णयों में भागीदारी नहीं है।
- ढोली परिवारों में सरकार द्वारा पंचवर्षीय कार्यक्रमों की जानकारियों का अभाव है।

Scanned with OKEN Scanner

प्रकाशन सूची श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम

क्रम.	पुस्तक एवं लेखक का नाम	प्रकाशन वर्ष	मूल्य (रूपये में)
1.	स्वामी मन्मथन-चरित्र और कथा के कुछ अंश- डॉ. वीरेन्द्र पैन्यूली	1991	15.00
2.	स्वामी मन्मथन : जानी अनजानी यात्रा- डॉ. उमा मैठाणी	1991	350.00
3.	उत्तराखण्ड में चाय की खेती- श्री रमित जोशी	1992	60.00
4.	मुझे स्वयं सीखने दीजिये- श्री आनन्द द्विवेदी	1992	100.00
5.	पूर्ण आत्मनिर्भर शिक्षा- श्री आनन्द द्विवेदी	1992	100.00
6.	वन पंचायत- श्री रमेश पांडे	1994	50.00
7.	आंदोलित उत्तराखण्ड में पांच हफ्ते- श्री पूर्णानन्द	1995	33.00
8.	सावित्री : एक जीवन यात्रा- डॉ. कैरन ट्रोलोप कुमार	1995	50.00
9.	Holistic Education- Shri Anand Divedi	1995	100.00
10.	सिद्धपीठ चन्द्रबदनी- श्री धर्मानन्द उनियाल	1996	21.00
11.	ग्रामीण विकास हेतु योजनाओं का निर्माण (सूक्ष्म स्तरीय नियोजन)	1997	50.00
12.	नवीन पंचायत राज व्यवस्था, स्वरूप, संभावनाएं एवं आवश्यतायें	1997	30.00
13.	हमारी ग्राम पंचायतें : शक्तियां, कार्य एवं भूमिका	1997	25.00
14.	Garhwal : Home in the Himalaya- Shri Ganesh Saili and others	1997	100.00
15.	एक युग का नायक : हेमवती नंदन बहुगुणा- डॉ. उमा मैठानी	1997	सजिल्द 400.00 पेपर बैक 250.00
16.	21वीं सदी के लिए विश्व के पर्वतों का पक्ष- डॉ. वीरेन्द्र पैन्यूली	1998	100.00
17.	पर्वतीय बच्चे : 21वीं सदी की प्रमुख चुनौतियाँ- श्री मनोज भट्ट, जय प्रकाश पंवार	1998	80.00
18.	पृथ्वी सम्मेलन : एजेंडा 21 अध्याय 13- डॉ. वीरेन्द्र पैन्यूली	1998	15.00
19.	सूक्ष्म स्तरीय नियोजन- श्री पूरन बर्त्वाल, दिनेश गोदियाल	1999	50.00
20.	उन्नतिपुर की ग्राम सभा	1999	15.00
21.	नवीन ग्राम पंचायत	1999	25.00
22.	जन जीवन की जल धाराएं- श्री वीरेन्द्र पैन्यूली	1999	100.00
23.	पंचायती राज : एक प्रश्नोत्तरी- डॉ. सी.एस. सूद	2000	40.00
24.	ग्यारह नाटक- श्री मनोज भट्ट, गजेन्द्र नौटियाल	2000	100.00
25.	Uttrakhand : Children in the Himalaya- Ms. Khila Bisht	2000	175.00
26.	पर्वतीय पेयजल स्रोत और जन भागीदारी से उनका संरक्षण- डॉ. वीरेन्द्र पैन्यूली	2000	60.00

Scanned with OKEN Scanner

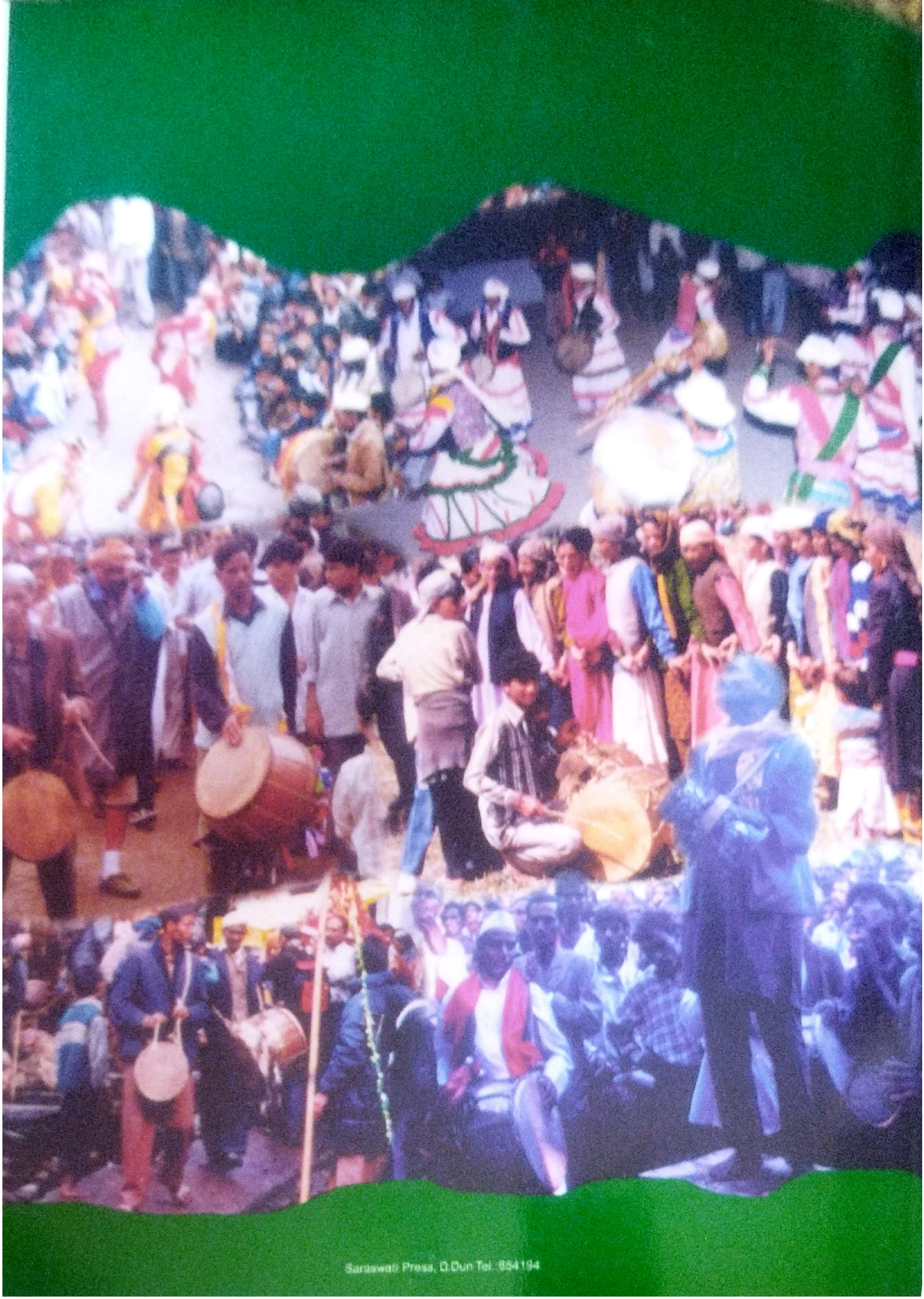

Scanned with OKEN Scanner